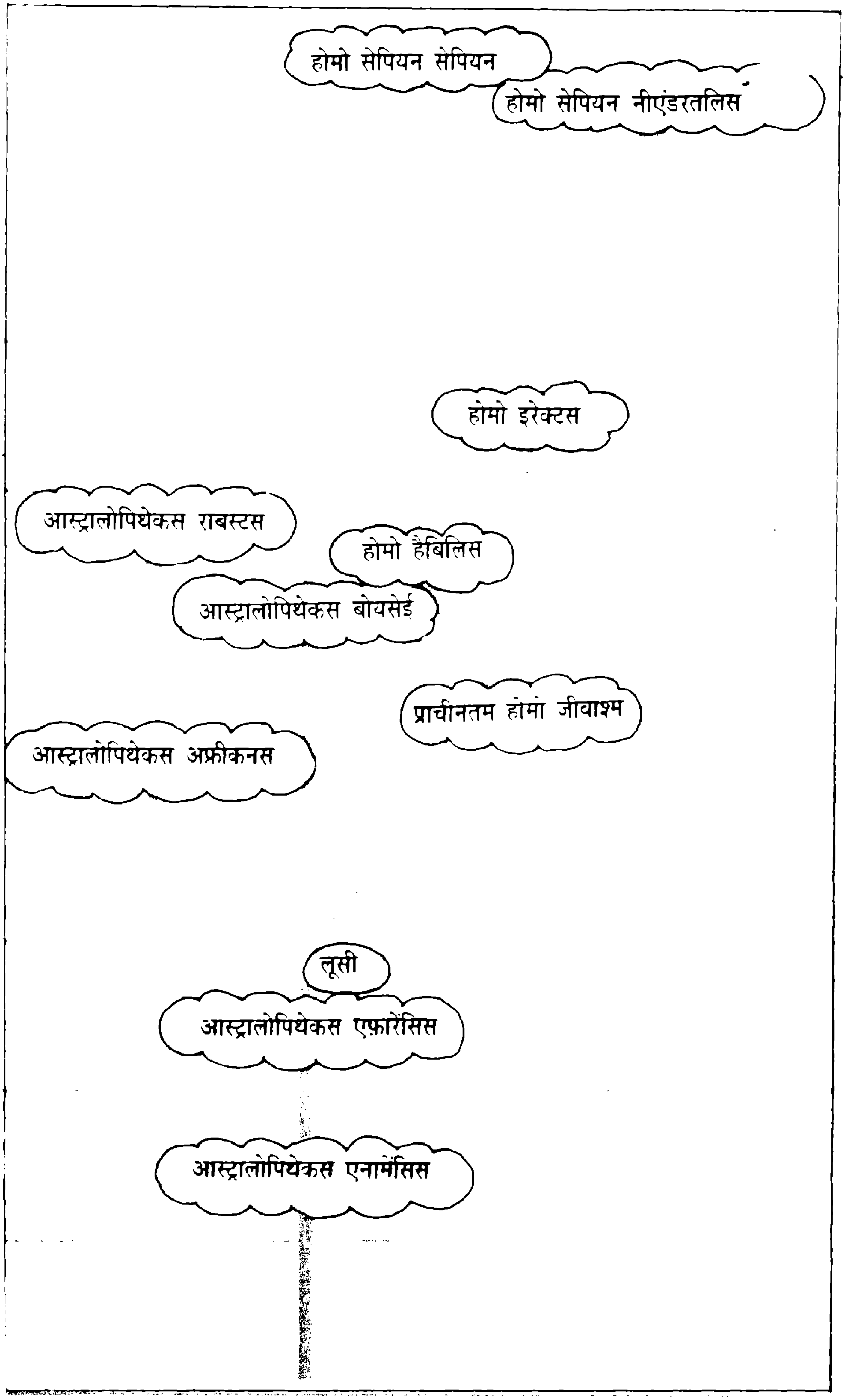
मानव की कहानी


होमो सेपियन सेपियन
होमो सेपियन नीएंडरतलिस
होमो इरेक्टस
आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस
होमो हैबिलिस
आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई
प्राचीनतम होमो जीवाश्म
आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस
लूसी
आस्ट्रालोपिथेकस एफ़ारेंसिस
आस्ट्रालोपिथेकस एनामेंसिस

मानव वंशावली

लोकोपयोगी विज्ञान

मानव की कहानी

लेखन एवं चित्रांकन
बिमान बसु

अनुवाद
शमशेर सिंह

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3130-2

पहला संस्करण 2000 *(शक 1921)*

The Story of Man *(Hindi)*

रु. 30.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क

नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

मधु

के लिए

जो किसी भी चीज के

बारे में कुछ भी पूछते हुए नहीं थकती

विषय सूची

प्रस्तावना

मानव जाति की उत्पत्ति का प्रश्न वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और आम आदमियों को बराबर लुभाता रहा है। लेकिन यह प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक एक रहस्य ही बना रहा। उस समय टी.एच. हक्सले और चार्ल्स डार्विन ने पहली बार बंदरों और मानवों के बीच एक युक्तियुक्त संबंध का उल्लेख किया। यद्यपि यह बात रूढ़िवादी आस्तिकों के गले नहीं उतर सकी, किंतु धीरे-धीरे यह विचार पुरा-जीवावशेष विज्ञानियों—अर्थात जीवाश्म अस्थियों का अध्ययन करके मानव पुरखों के बारे में खोज करने वाले वैज्ञानिकों के कार्यों से धीरे-धीरे दृढ़ होता चला गया। जैसे-जैसे जीवाश्मों के नये-नये प्रमाण मिलते गये, वैसे-वैसे मानव उत्पत्ति की पहेली सुलझती गयी। आज तस्वीर काफी स्पष्ट हो चुकी है, हालांकि अभी भी कुछेक कड़ियां अज्ञात हैं।

अब तक जो कुछ भी सामने आया है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि लगभग 80 लाख वर्ष पहले पेड़ों पर रहने वाले बंदर जैसे प्राणी से लेकर आश्चर्यजनक असाधारण कार्य कर सकने वाले बुद्धिमान प्राणी, मानव के विकास तक की यात्रा निर्विघ्न नहीं रही है। इस यात्रा के दौरान बहुत से महापरिवर्तन हुए और बहुत सी चरमांत की स्थितियां उत्पन्न हुई। किंतु उससे भी अधिक मंत्रमुग्ध करने वाली कहानी उन मुट्ठी भर पुरुषों और महिलाओं की है जो अपने जीवन के सब सुखों को त्यागकर गरम ऊष्णकटिबंधीय अफ्रीका में और अन्य स्थानों पर हमारे प्राचीन पुरखों की तलाश में निकल पड़े। वे चिलचिलाती धूप में दृढ़ निश्चय के साथ अपने काम पर डटे रहे। कभी वे बिखरे हुए पत्थरों, या पत्थरों की छाया में किसी दांत को तलाशते, तो कभी किसी जबड़े के एक टुकड़े को या फिर किसी हड्डी के एक टूटे हुए कोने को। हालांकि इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि उन्हें कोई चीज मिल भी पायेगी। उनकी सफलताओं और असफलताओं की कहानी किसी सनसनीखेज जासूसी कहानी से कम उत्तेजक और मनमोहक नहीं है। जबड़े या टांग की किसी हड्डी का टुकड़ा किसी बंदर

का है या मानव जैसे किसी प्राणी का, यह पहचानने के लिए, या फिर जिस प्राणी की जीवाश्म खोपड़ी उनके पास थी, वह बोल सकता था या नहीं, यह पता लगाने के लिए वे जिन विलक्षण तरीकों का इस्तेमाल किया करते थे, वे किसी शरलक होम्स को भी शर्मिंदा करने के लिए काफी थे।

मानव विकास में मेरी रुचि केवल कुछ वर्ष पहले तब उत्पन्न हुई जब मैं इस विषय पर एक रेडियो धारावाहिक तैयार करने के काम से जुड़ा। कथा लेखकों के लिए मुझे कुछ पृष्ठभूमि संबंधी सामग्री तैयार करनी थी। जब मैंने सारी सामग्री एकत्र कर ली, तो उस समय जो सूचना-भंडार मेरे सामने था उसे देखकर मैं भौंचक्का रह गया। यह सूचना उससे कहीं अधिक थी, जो एक रेडियो धारावाहिक के कुछेक कथांशों में पेश की जा सकती थी। यह सूचना ऐसी थी जिसे एक अधिक स्थायी कृति में स्थान मिलना चाहिए था। हालांकि धारावाहिक को बहुत बड़ी सफलता मिली, किंतु उसे एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का विचार मेरे मन से कभी नहीं गया। इसका अवसर मुझे तब मिला, जब नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से मुझे इस आशय का अनुरोध प्राप्त हुआ कि उन्हें उक्त विषय पर लोकोपयोगी विज्ञान पुस्तकमाला के लिए एक पुस्तक चाहिए।

किंतु पुस्तक लिखना उतना आसान नहीं साबित हुआ, जितना मैं समझता था। जब मैंने उपलब्ध सामग्री को अद्यतन करने की कोशिश की, तो मुझे यह देखकर बेहद घबराहट हुई कि लगभग हर रोज नये-नये जीवाश्म और नये-नये मत सामने आ रहे थे। इन सबके कारण, मैंने जो कुछ पहले लिखा होता था, वह अप्रासंगिक हो जाता था। नयी खोजों के साथ कदम मिलाते हुए, मूल पाठ में परिवर्तन करना एक भयानक स्वप्न सा लगने लगा। इसके बावजूद एक निश्चित समय के भीतर मुझे अपना काम पूरा करके देना था। अंततः इस मामले में मुझे एक समझौता करना पड़ा और हारकर मुझे एक आखिरी तारीख निश्चित करनी पड़ी। यह तारीख थी जुलाई, 1996। यदि उसके बाद कोई ऐसा नया तथ्य सामने आया है, जो मेरी पुस्तक में दिये गये विवरण से भिन्न है, तो मुझे आशा है कि पाठकगण उसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

मेरे बहुत से मित्रों और सहयोगियों ने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया; उन सबका आभारी हूं। विशेषकर डा. जी.पी. फोंडके के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूं, जो मानव विकास पर रेडियो धारावाहिक के मुख्य प्रेरणा स्रोत थे। प्रारंभिक प्रारूपों को पढ़ने के बाद उन्होंने मुझे जो अमूल्य सुझाव दिये, उनसे मुझे पुस्तक को अंतिम रूप देने में बहुत मदद मिली। मेरी मित्र शकुंतला भट्टाचार्य ने मुझे अपनी पुस्तकें उधार देने की कृपा की, जिनसे मुझे मूल्यवान

संदर्भ सामग्री उपलब्ध हो पायी। नेशनल बुक ट्रस्ट की श्रीमती मंजु गुप्ता की निरंतर सतर्कता के बिना, मैं इस पुस्तक को कभी पूरा नहीं कर पाता। वह मुझे निरंतर अंतिम तारीख की याद दिलाती रहती थीं (हालांकि मैं मूलतः तय की गयी अंतिम तारीख तक अपना काम पूरा नहीं कर पाया)। मैं श्री सी.जी. रफेल को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूं जिन्होंने कंप्यूटर पर मूल पाठ को टाइप किया और बाद में जो-जो परिवर्तन करने चाहे उन्हें उदारतापूर्वक किया। मैं अपनी पत्नी आलोका से मिली सतत् सहायता को भी नहीं भूल पाऊंगा। उन्होंने वक्तबेवक्त मुझे न जाने कितनी बार चाय बनाकर दी जिसकी बदौलत मैं अपने लेखन की गति को बनाये रख पाया।

बिमान बसु

नयी दिल्ली
नवंबर, 1996

1

पेड़ों की शाखाओं पर निवास

हम कहां से आये ? हमारे पूर्वज धरती पर कब आये ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो युगों से मानव जाति को परेशान करते रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर उतने ही अधिक हैं, जितने कि इस दुनिया में धर्म। किंतु सभी प्रारंभिक विचारधाराओं में एक बात समान थी और वह थी 'सृष्टि' संबंधी परिकल्पना। प्रायः सर्वत्र यह माना जाता था कि इस संसार में जो कुछ भी मौजूद है—चाहे वे पेड़-पौधे हों, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी या फिर मानव—इन सबकी उत्पत्ति एक ही समय पर किसी अलौकिक शक्ति द्वारा हुई है। इस शक्ति को चाहे आप ईश्वर कहें या किसी और नाम से पुकारें। यह स्वाभाविक ही था कि सृष्टि की कल्पना लगभग सभी धार्मिक मतों में की गयी थी और मानव को ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना समझा जाता था।

किंतु विज्ञान चीजों को अलग ढंग से देखता है। जो तथ्य उसके सामने आते हैं उन्हें वह तार्किक व्याख्याओं और यथा-उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर समझने की कोशिश करता है।

ब्रिटिश प्रकृति वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने 1871 में अपनी पुस्तक 'दि डिसेंट आफ मैन' में पहली बार यह मत प्रकट किया कि मानव का विकास बंदरों से हुआ है। डार्विन की यह परिकल्पना दुनिया के विभिन्न द्वीपों तथा महाद्वीपों के पेड़-पौधों और प्राणियों के जीवन से संबंधित उनके एक व्यापक अध्ययन पर आधारित थी। उन्होंने यह अध्ययन अपने अनुसंधान पोत एच.एम.एस. बीगल से 1831 से 1836 तक के पांच वर्ष की समुद्री यात्रा के दौरान किया था। उन्होंने अपनी यात्रा के दौरान सैकड़ों जातियों के पेड़-पौधे और पशु-पक्षी देखे और उन्हें एकत्रित किया। उनका निरीक्षण करने पर डार्विन, अलग-अलग पारिस्थितिक परिवेश में पायी जाने वाली समान जातियों के गुणों में थोड़े-थोड़े अंतर को पहचान सके। उन्होंने अपने जांच परिणामों का सारांश अपनी पुस्तक 'आन दि ओरिजिन आफ स्पीशिज बाई मीन्स आफ नेचुरल सिलेक्शन' में प्रस्तुत



'दि डिसेंट आफ मैन' के लेखक, चार्ल्स डार्विन।

किया। यह पुस्तक 1859 में प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने बताया है कि किस प्रकार एक प्रजाति एक विशेष प्रक्रिया द्वारा, ऐसी दूसरी प्रजाति में विकसित हो सकती है जो कि बदले हुए पर्यावरण में रह पाने के लिए अधिक क्षमतावान होती है। इस प्रक्रिया को उन्होंने नेचुरल सिलेक्शन (प्राकृतिक वरण) नाम दिया (सर्वाइवल आफ दि फिटेस्ट या 'श्रेष्ठतम की उत्तरजीविता' शब्दावली का प्रयोग बाद में अंग्रेज दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर द्वारा किया गया था)। डार्विन का मानना था कि मानव जाति का विकास भी ऐसी ही प्रक्रिया द्वारा हुआ था।

डार्विन से पहले थामस हक्सले ने भी 1863 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'मैन्स प्लेस इन नेचर' में मानव और बंदरों की शारीरिक रचना की विस्तारपूर्वक तुलना की थी, जिससे यह सिद्ध होता था कि मानव और बंदरों के बीच निकट संबंध हो सकता है। हक्सले ने यह सुझाव दिया कि बंदर के साथ हमारा इतना निकट संबंध है कि हम दोनों के बीच विकास की कड़ी अवश्यंभावी है। किंतु उन्होंने माना कि यह सही-सही बता पाना मुश्किल है कि दोनों का साझा पूर्वज कैसा दिखायी देता होगा।

डार्विन ने 'ओरिजिन आफ स्पीशिज' में मानव विकास के प्रश्न को नहीं छुआ था। उन्होंने केवल इतना संकेत भर दिया था कि 'मानव की उत्पत्ति और उसके इतिहास पर प्रकाश डाला जायेगा।' इस प्रश्न पर पहली बार विस्तृत चर्चा हक्सले की पुस्तक 'मैन्स प्लेस इन नेचर' में की गयी। हक्सले ने यह स्वीकार किया कि हम यह नहीं कह सकते कि कौन-सा बंदर मानव के सबसे निकट है। उन्होंने शारीरिक रचना की दृष्टि से मानव की तुलना गोरिल्ला और दिमागी दृष्टि से चिम्पैंजी से की।

डार्विन और उनके बहुत से अनुयायियों ने मानव जाति और बंदरों के बीच निकट संबंधों को स्पष्ट करने के लिए हक्सले के अध्ययन का सहारा लिया। अपनी पुस्तक 'डिसेंट आफ मैन' के छठे अध्याय में इस संबंध में पुष्टि के लिए डार्विन ने शारीरिक रचना और भ्रूण संबंधी कई समानताओं का उल्लेख किया है।

डार्विन ने इस पुस्तक में लिखा है कि "मानव ऐसे रोएंदार और दुमदार चौपाये का वंशज है, जो आदतन वृक्षवासी रहा होगा।" वह आगे कहते हैं, "जैसा कि मुझे लगता है, हमें यह मान लेना चाहिए कि अपने सभी उदात्त गुणों के बावजूद मानव के शारीरिक ढांचे पर उसके निम्न उत्पत्ति स्रोत की अमिट छाप मौजूद है।"

अफ्रीकी बंदरों और मानव के बीच के संबंधों को पहचानने के बाद डार्विन ने यह पकिल्पना की कि मानव परिवार की उत्पत्ति अफ्रीका में ही हुई होगी। अब हम जानते हैं, यह बात सही भी है। डार्विन की एक धारणा यह थी कि मानव सुलभ कई विशेषताएं—जैसे दो पैरों पर चलना, औजार बनाना और दिमाग का बड़ा होना—एक साथ विकसित हुई। डार्विन ने अपनी पुस्तक 'डिसेंट आफ मैन' में लिखा है, "आदमी के लिए उसके हाथों और भुजाओं का मुक्त होना और अपने पैरों पर मजबूती से खड़े होना, उसके लिए एक लाभकारी स्थिति थी, क्योंकि जीवन की लड़ाई में उसे जो जबरदस्त सफलता मिली, उससे इन बातों को लेकर शक की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती। ऐसे में मानव के पुरखों के लिए उत्तरोत्तर अधिक सीधे होते चले जाना और दो पैरों के बल चलना और भी अधिक लाभकर रहा होगा।" वह आगे लिखते हैं, "जब तक हाथों और पैरों का आदतन इस्तेमाल शरीर के पूरे वजन को संभालने के लिए किया जाता रहा होगा, या जब तक वे खास तौर पर पेड़ों पर चढ़ने लायक ही रहे होंगे तब तक वे हथियार बना पाने और सही निशाने पर पत्थर और भाले फेंकने में दक्ष नहीं हो पाये होंगे।"

जव डार्विन की 'डिसेंट आफ मैन' पुस्तक प्रकाशित हुई, तो उन्हें लोगों

का प्रकोप-भाजन बनना पड़ा क्योंकि इस पुस्तक की मान्यताएं स्थापित धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध थीं। परंतु इसके साथ ही, इस पुस्तक से वैज्ञानिकों को मानव-उत्पत्ति के स्रोतों की खोज के लिए अध्ययन की एक निश्चित दिशा मिल पायी।

जैसा कि डार्विन का विचार था, हमारी प्रजाति का विकास बंदरों से हुआ था, तो फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि बंदरों से ही यह विकास क्यों हुआ ? बंदरों में ऐसी क्या विशेषता थी कि उनमें से कम से कम एक का विकास हम जैसे बुद्धिमान प्राणी के रूप में हुआ ? इन प्रश्नों का उत्तर पाना मुश्किल नहीं है। यदि हम पशु जगत पर निगाह डालें, तो साफ तौर पर यह देख सकते हैं कि बंदर—जैसे चिम्पैंजी, गोरिल्ला, ओरंगउटन आदि—दूसरे पशुओं से बिलकुल अलग दिखायी देते हैं। अनेक रूपों में इन पूंछ-हीन वन निवासी पशुओं और मानव में अद्भुत समानताएं पायी जाती हैं—न केवल शारीरिक बनावट में बल्कि कुछ-कुछ व्यवहार में भी।

मानव से बंदरों की समानताओं को जानने से पहले हम इस बात की जांच करेंगे कि वन-वृक्षों की शाखाओं पर जीवन-यापन के लिए बंदरों का रूपांतरण कैसे हुआ। जाहिर है कि शाखाओं में जीवन-यापन की सबसे पहली और सबसे बड़ी आवश्यकता है शाखा को कसकर पकड़े रहने की क्षमता। इसके लिए आवश्यकता होती है ऐसे हाथों की, जिनमे उंगलियां, नाखून और मुड़ सकने वाले अगूठे हों, न कि पंजों की। मुड़ सकने वाले अंगूठों से वृक्ष निवासी बंदरों को छोटी-छोटी खाद्य वस्तुएं जैसे गिरीदार और सरस फल चुनने और पकड़ने में मदद मिलती है। अंगूठे और तर्जनी का इस्तेमाल करते हुए वे आसानी से फल चुन और तोड़ सकते हैं।

वृक्ष-निवासी के लिए दूसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता है सामने की शाखा पर छलांग लगाने से पहले उसकी दूरी का सही अंदाज लगाने की क्षमता। इसके लिए गहराई का आकलन कर पाना आवश्यक होता है, जो केवल घन-दर्शी दृष्टि द्वारा ही संभव है। ऐसी दृष्टि वे आंखें दे सकती हैं जो सिर के सामने की तरफ स्थित हों। यह एक और ऐसी विशेषता है जो बंदर में पायी जाती है। वृक्ष निवासियों का एक गुण यह भी होता है कि वे बैठ सकें, सीधे खड़े हो सकें ताकि उनकी अगली भुजाओं का इस्तेमाल, खाने की वस्तुओं को पकड़ने, उठाने, संभालने और अन्य काम करने के लिए किया जा सके।

बंदरों के पास ऐसी सुविकसित दृष्टि होती है, जिससे वे अच्छी तरह से रंगों की पहचान कर सकते हैं। ऐसी दृष्टि वन-निवास के लिए बहुत लाभकर

होती है, क्योंकि इससे उन्हें फल और अन्य खाद्य पदार्थों को अलग से पहचानने और एक प्रकार के दृष्टि-संवाद में मदद मिलती है।

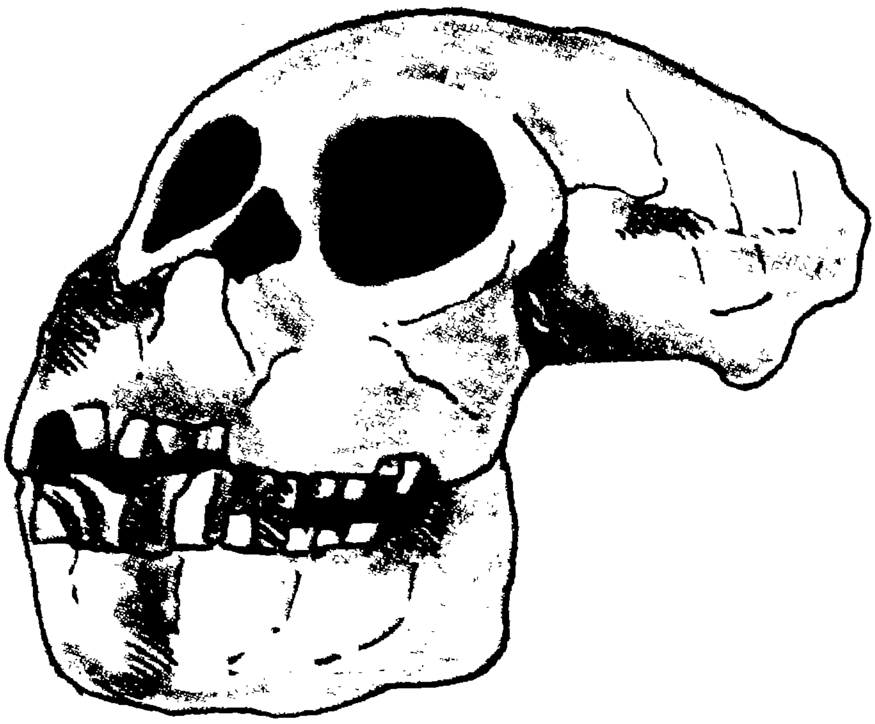
इन सबसे बढ़कर एक बात और है। ये सब कार्य कर पाने के लिए वृक्ष-निवासी बंदर को जरूरत थी एक ऐसे कुशल दिमाग की, जो उपलब्ध सूचना का, जो उसे शाखा को पकड़ने वाली उंगलियों के पोरों से या दूर की शाखा की दूरी को मापने वाली आंखों से या अन्य ऐसे स्रोतों से प्राप्त होती थी, कारगर इस्तेमाल कर सके।

बंदरों के पास बहुत पहले से ही सुविकसित दिमाग था। परंतु दिमाग का आकार बढ़ने के परिणामस्वरूप उसकी जो क्षमताएं बढ़ीं उन्होंने ही अंततः आधुनिक मानव के रूप में बंदर के विकास की दिशा निर्धारित की।

हालांकि शारीरिक दृष्टि से मानव और बंदरों के बीच बहुत सी समानताएं पायी जाती हैं, किंतु एक विशेषता ऐसी है, जो मानव को बंदरों से बिल्कुल अलग करती है—बंदर मानव की तरह बोल नहीं सकते। अधिकतर पशु और बंदर भी या तो गंध (जिन्हें फेरोमोन्स कहते हैं) और चेहरे की अभिव्यक्तियों के माध्यम से या फिर मुंह से कुछ आवाजें निकालकर (जैसे चीख या चिंघाड़कर) एक-दूसरे के साथ संवाद करते हैं। इन्हीं तरीकों से उनके जीवन की मौलिक आवश्यकताएं अच्छी तरह से पूरी हो जाती हैं। किंतु जिस तरह से हम मानव अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, बंदर उसके लिए पूर्णतः अक्षम हैं। अब ऐसा माना जाता है, हालांकि मानव जैसे प्राणियों का उद्भव लगभग 60 लाख वर्ष पहले हो चुका था, किंतु मानव के पुरखों ने, विशिष्ट अर्थों के संप्रेषण के लिए शब्दों के उच्चारण की क्षमता काफी बाद में प्राप्त की और स्पष्ट रूप से बोल पाने की इसी क्षमता की बदौलत ही आधुनिक मानव के प्रादुर्भाव का मार्ग प्रशस्त हुआ।

मानव के अत्यंत जटिल विकास-क्रम की खोजबीन करने से पहले, इस बात का पता लगाना आवश्यक है कि बंदरों की उत्पत्ति सबसे पहले कब हुई। विश्व भर में जीवाश्मों की खोज में भटकने वालों की वर्षों की कठिन खोज के बाद अब यह साबित हो गया है कि बंदरों की उत्पत्ति लगभग 3 करोड़ वर्ष पहले हुई थी। वैज्ञानिकों ने बंदर के सबसे पुराने जिस जीवाश्म की पहचान की है वह एक बंदर की खोपड़ी है जो लगभग 2 करोड़ 80 लाख वर्ष पुरानी है। यह मिस्र के कायरो नगर के दक्षिण में स्थित फयूम नामक स्थान के रेगिस्तान में पायी गयी थी।

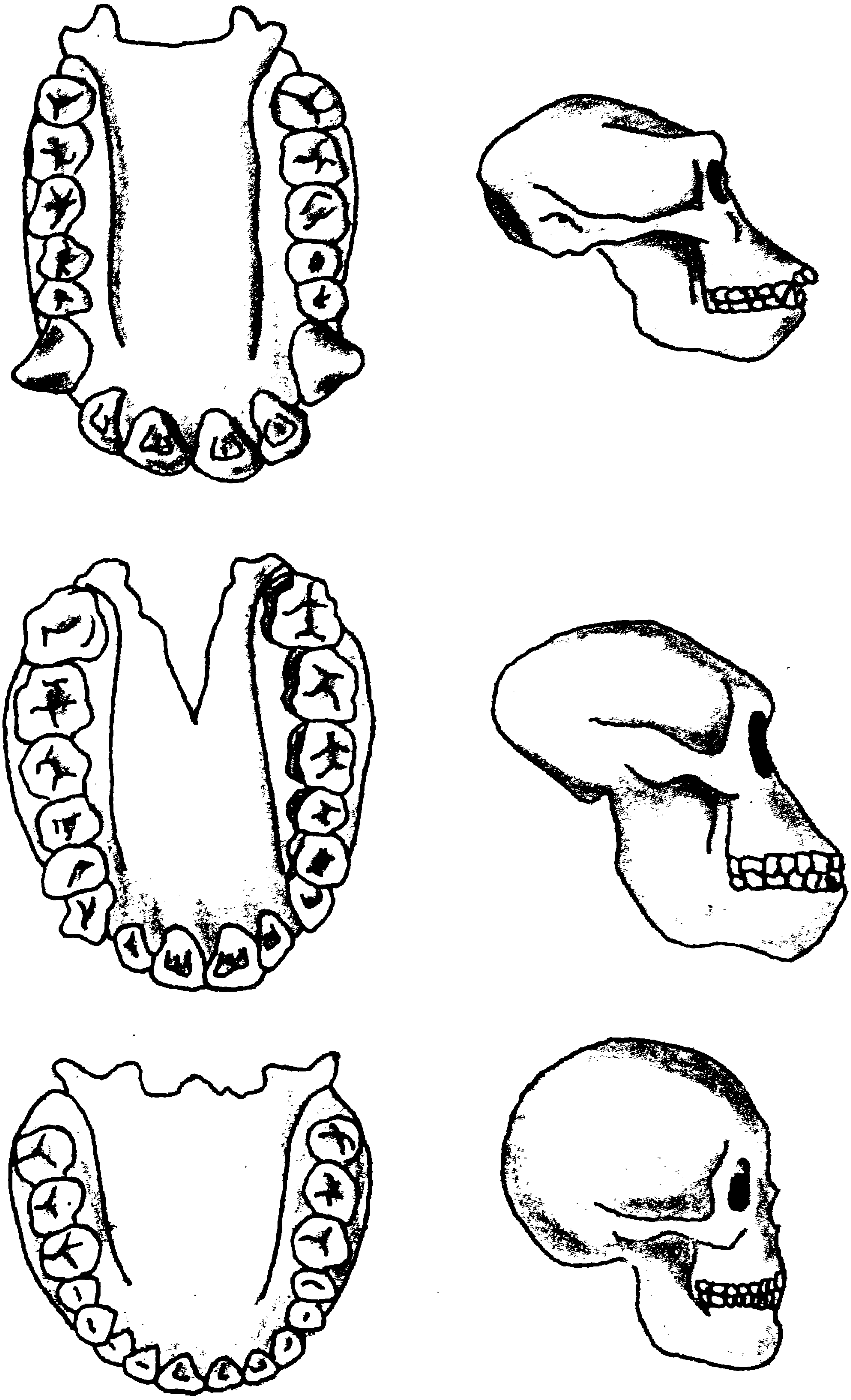
जिस स्थान पर यह खोपड़ी पायी गयी, वहां वैज्ञानिकों को जमीन में ऐसे



फयूम, मिस्र में खोजी गयी *ऐजिप्टोपिथेकस* खोपड़ी।

पौधों और फलों के जीवाश्म मिले जो ऊष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों में पाये जाते थे। इससे यह पता चलता है कि यह स्थल लगभग 3-4 करोड़ वर्ष पहले हरे-भरे जंगलों के बीच स्थित था। सबसे पहले के बंदर, जिन्हें वैज्ञानिकों ने *ऐजिप्टोपिथेकस* ('इजिप्ट' अर्थात मिस्र जहां ये बंदर पाये गये और यूनानी भाषा के शब्द 'पिथेकस', जिसका अर्थ है बंदर, को मिलाकर यह शब्द बना है) नाम दिया है, इस ऊष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वन में रहते थे और जंगली फल-फूल खाकर जीवित रहते थे। फयूम में पाये गये अस्थि जीवाश्मों से पुनर्निर्मित बंदर एक छोटा-सा पशु था, जो बिल्ली या छोटे कुत्ते से बड़ा नहीं था। किंतु इस मामले में आकार का कोई महत्व नहीं था 'क्योंकि हमारी जानकारी में यह मानव की सीधी पूर्वज परंपरा का सबसे प्राचीन प्राणी था।' हम *ऐजिप्टोपिथेकस* के वंशजों को आज के अफ्रीकी चिम्पैंजी और गोरिल्ला और एशियाई गिब्बन और ओरंगउटन के रूप में देख सकते हैं। इनमें से कोई भी अपने 'बंदरपन' से ऊपर उठकर आधुनिक मानव बनने की ओर अग्रसर नहीं हो पाया।

समय-समय पर ऐसे जीवाश्मों की खोज संबंधी सूचनाएं मिलती रही हैं, जिनके बारे में यह दावा किया गया कि वे मानव के 'असली पुरखों' के जीवाश्म हैं। इनमें केन्या के *प्रोकान्सूल* और *केनियापिथेकस* नामक जीवाश्म भारत, पाकिस्तान, चीन और केन्या में मिले *रामपिथेकस* और *शिवपिथेकस* नामक दो जीवाश्म और यूरोप से प्राप्त *ड्रायोपिथेकस* और *रुडापिथेकस* नामक दो जीवाश्म शामिल हैं। बंदर जैसे ये प्राणी लगभग 80 लाख से 2 करोड़ वर्ष पहले

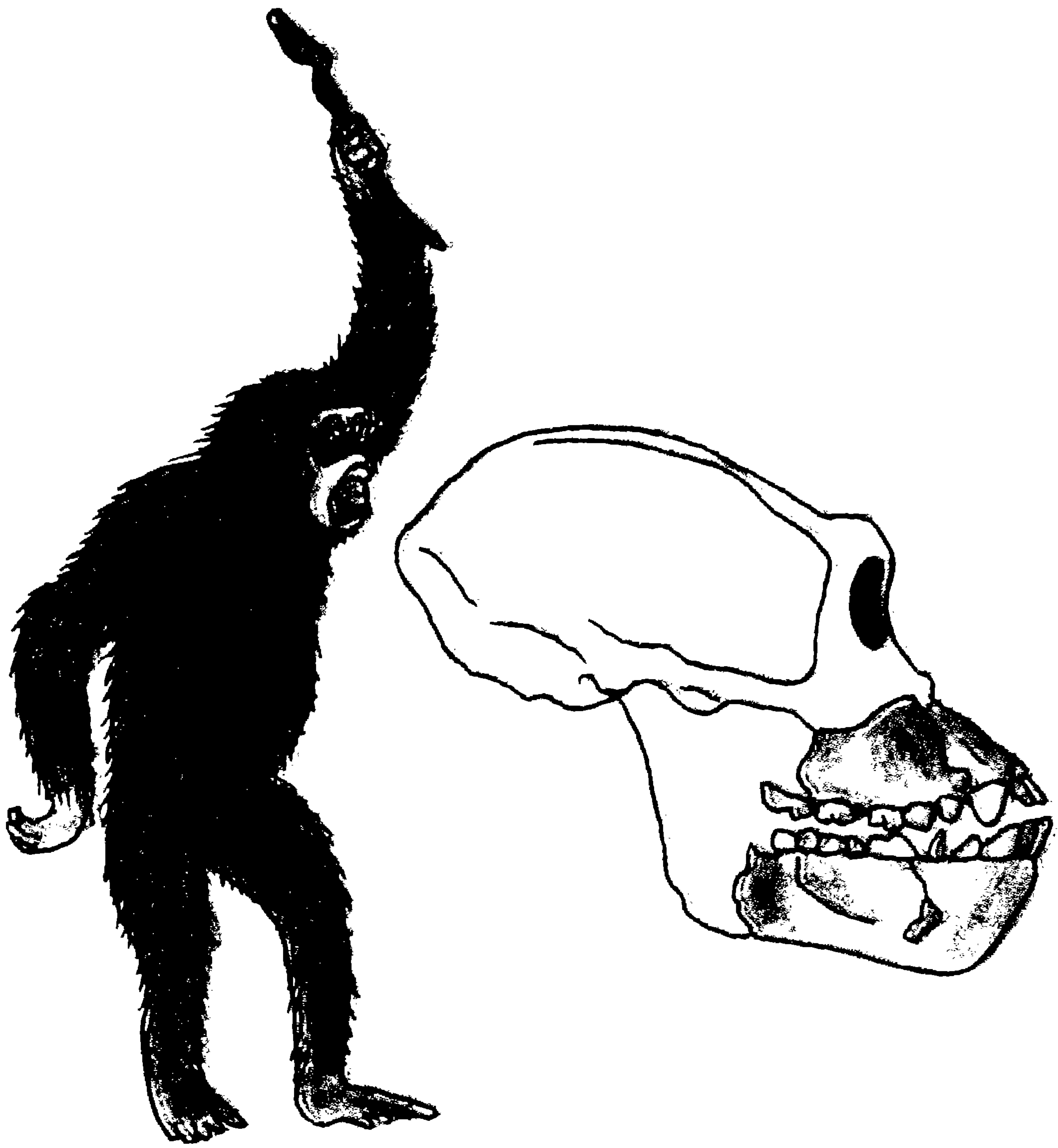


बंदर तथा मानव के जबड़े : बंदर का जबड़ा अंग्रेजी के 'यू' के आकार का होता है और उसके रदनक लंबे होते हैं, जबकि मानव का जबड़ा चापाकार होता है और उसके रदनक तो प्रत्यक्ष दिखायी भी नहीं देते।

अलग-अलग समय पर उक्त क्षेत्रों में रहते थे। इनमें से *रामपिथेकस* नाम के जीवाश्म ने सनसनी पैदा कर दी थी। इसे एक समय मानव का सबसे पुराना सीधा पूर्वज माना गया था (इसका नाम रामायण महाकाव्य के निर्वासित राजकुमार राम के नाम पर रखा गया था)। इस जीवाश्म का ऊपरी जबडा सर्वप्रथम भारत में शिवालिक की पहाड़ियों में पाया गया था।

मानव और बंदर के जबड़ों और दांतों में काफी भिन्नता होती है। किसी दांत या जबड़े के आकार या उसकी अन्य विशेषताओं को देखकर यह बताया जा सकता है कि वह दांत या जबड़ा बंदर का है या मानव का। उदाहरण के लिए बंदर का जबड़ा अंग्रेजी के अक्षर 'यू' के आकार का होता है जबकि मानव का जबड़ा छोटा और चापाकार होता है। बंदर का जबड़ा बाहर की तरफ निकला हुआ होता है और उसके रदनक दांत बड़े होते हैं और ऊपरी जबड़े के रदनक और छेदक दांत के बीच अंतराल होता है। मानव या उसके नजदीकी पूर्वजों में जबड़ा आगे की तरफ निकला हुआ नहीं होता है और उनके ऊपरी जबड़े के रदनक और छेदक दांत के बीच फासला भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त बंदर की दाढ़ भी मानव की दाढ़ से बड़ी होती है। इस प्रकार किसी जीवाश्म के जबड़े या कुछ दांतों को देखकर वैज्ञानिक यह बता सकते हैं कि वे बंदर से मिलते-जुलते प्राणी के हैं, या मानव से मिलते-जुलते प्राणी के।

1910 में अंग्रेज जीवाश्म वैज्ञानिक गाई पिलग्रिम ने भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण विभाग के साथ काम करते हुए शिवालिक की पहाड़ियों में एक निचले जबड़े के दो भाग खोज निकाले। उस समय वे अपनी इस खोज के महत्व को नहीं पहचान पाये। पहला वैज्ञानिक जिसने पिलग्रिम की खोज के महत्व को पहचाना वह था एक युवा येल विद्यार्थी जी एडवर्ड लेविस। उसने 1932 में चंडीगढ़ के निकट हरिताल्या नगर नामक स्थान पर (जो कई गांवों का समूह है) खुदाई करते समय *रामपिथेकस* का ऊपरी जबड़ा खोज निकाला। उसने यह दावा किया कि वह आधुनिक मानव का सर्वसामान्य पुरखा था। इस जीवाश्म में मानव जैसी कुछ विशेषताएं थीं और वह एक करोड़ चालीस लाख वर्ष पुराना था। बाद में उसी प्रकार के जीवाश्म चीन और पूर्वी अफ्रीका में भी पाये गये थे। बंदरों और मानवों के डी.एन.ए. के अध्ययन से वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया कि हमारा और बंदरों का पूर्वज संभवतः एक ही था जो लगभग एक करोड़ वर्ष पहले हुआ था, और वह पूर्वज संभवतः *रामपिथेकस* था। किंतु सत्तर के दशक के मध्य तक रामपिथेकस को समर्थन मिलना उस समय बंद हो गया जब डोनाल्ड जोहान्सन की खोज *आस्ट्रालोपिथेकस एफरेंसिस* से यह संभावना



रामपिथेकस (बायें) और जबड़ों के टुकड़ों से पुनर्निर्मित खोपड़ी (दायें)।

सबसे अधिक बलवती हो उठी कि मानव प्रजाति का उद्‌भव अफ्रीका में हुआ न कि एशिया में।

रामपिथेकस को मानव का आदि पुरखा मानने की धारणा को अंतिम धक्का 1979 में तब लगा जब येल विश्वविद्यालय के डेविड पिलबीम ने शिवालिक पहाड़ियों में ही बंदर से बहुत अधिक मिलती-जुलती एक पूरी की पूरी खोपड़ी खोज निकाली। इस बंदर की विशेषताएं निश्चित रूप से ओरंगउटन से मिलती थीं। शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो गयी कि *रामपिथेकस* की, यदि सभी की सभी नहीं, तो अधिकतर मानव सुलभ विशेषताएं वस्तुतः जीवाश्मों के ठोस प्रमाण पर आधारित न होकर 'पुनर्निर्माणकारी मनपसंद सोच' का परिणाम थीं।

रामपिथेकस भी आखिर एक बंदर ही तो था, जो एक ऐसे समूह का

सदस्य था जिसका संबंध ओरंगउटन से था। जैसा कि अब हम जानते हैं कि बंदर जैसा वह जीव जिसके वंशज होने का हम दावा करते हैं, बहुत बाद में—लगभग 30 लाख वर्ष पहले अस्तित्व में आया। यह प्राणी उस समय के आसपास विश्वभर में पैदा हुई जलवायु संबंधी उथल-पुथल के कई दौरों से गुजरता हुआ अस्तित्व में आया और वृक्षवासियों को खुले में लाने का निमित्त बना। वास्तव में यह एक जीवन और मृत्यु का प्रश्न था और जो बंदर बदलते हुए पर्यावरण के अनुसार खुद को ढाल सके वे विजयी रहे। इन मैदान-निवासियों का एक उत्तरवर्ती ही अंततः हमारा पूर्वज बना।

2

चलने वाले बंदर

उत्तरी अफ्रीका के ऊष्णकटिबंधीय हरे-भरे घने जंगलों में रहने वाले आदिम बंदरों में पहले से ही कुछ विशेषताएं ऐसी थीं, जो कि अन्य स्तनधारी पशुओं में नहीं पायी जाती थीं। उनकी अच्छी-खासी त्रिआयामी दृष्टि थी और मांसपेशियों में वह विशिष्ट तालमेल था जो कि वृक्ष-निवास के लिए जरूरी होता है। इन विशेषताओं के साथ आदिम बंदर आसानी से जीवन-यापन करते थे। वे अपना अधिकतर समय पेड़ों पर कूदते-फांदते बिताते। वे अधिकतर रसदार, गिरीदार और अन्य फल खाते थे। कभी-कभी वे जंगलों में बहुतायत में पाये जाने वाले छोटे-छोटे जानवरों को भी अपना आहार बना लेते थे। उन्हें धरती निवासी जानवरों—चाहे वे घास आदि चरनेवाले हों या मांसभक्षी--से बहुत ही कम स्पर्द्धा करनी पड़ती थी।

किंतु पचास से साठ लाख वर्ष पहले, पर्यावरण में एक भयंकर परिवर्तन हुआ । पर्यावरण का तापमान एकाएक बहुत अधिक गिर गया। उससे बहुत से वन-निवासी जंतुओं का शांतिमय जीवन समाप्त हो गया। इन जंतुओं में आदिम बंदर भी शामिल थे। उन्हें एक अलग किस्म के दुश्मन का सामना करना पड़ रहा था। वह दुश्मन था जलवायु में हो रहा तीक्ष्ण परिवर्तन, जिसके परिणामस्वरूप उनके एकमात्र निवास वन तेजी से समाप्त हो गये। यह वह चुनौती थी जिसने अंततः वृक्षवासी बंदरों के भाग्य का निर्णय किया और उनमें से कुछ को धरती के जीवन के अनुरूप ढालने और दो पैरों पर चलने को मजबूर किया। यहीं से आगे चलकर उनके मानव बनने की शुरुआत हुई।

भूमंडल के बेहद ठंडा होने—जिसके कारण बहुत से जंगल समाप्त हो गये—के प्रमाण गहरे समुद्र की तहों और धरती पर जमे जीवाश्म परागों और अन्य भूगर्भीय रिकार्डों से मिल जाते हैं। कुछ लोगों का तो यह मानना है कि तापमान 11 डिग्री सेल्सियस गिर गया था जिसके परिणामस्वरूप दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में तेजी से ढेरों बर्फ जम गयी। इससे ध्रुवीय हिम-परतों में इतना अधिक पानी

फंसकर रह गया कि विश्व भर में सागरों का जलस्तर 50 से 60 मीटर तक नीचे चला गया। इसके साथ ही जलवायु इतनी शुष्क हो गयी कि वर्षा पर उसका जबर्दस्त विपरीत प्रभाव पड़ा और बहुत से स्थान, विशेषकर ऊष्णकटिबंधीय अफ्रीका के घने जंगल मात्र घास के मैदान बनकर रह गये। जैसे-जैसे जंगल गायब होते गये वैसे-वैसे बंदरों का आदिम प्राकृतिक वास तेजी से घटता चला गया—यहां तक कि उनका जीवन भी खतरे में पड़ गया।

इस समय के आसपास आदिम बंदरों को भोजन और निवास संबंधी प्रतिस्पर्द्धा के कारण समूहों में बंट जाना पड़ा। उनमें से कुछ तो जंगलों में ही बने रहे और शेष को वृक्ष-वास छोड़कर घास के खुले मैदानों में जीवन बिताने के लिए बाध्य होना पड़ा। हो सकता है कि विस्थापित समूहों में से जो सीधे खड़े हो पाने में अधिक दक्ष रहे हों, उनकी गुजर-बसर अधिक बेहतर रही हो और अंततः इसके कारण ही दो पैरों के बल चलने का मार्ग प्रशस्त हुआ हो। यह विकास की वह अवस्था थी जो मानवत्व की ओर बढ़ने का प्रमाण चिह्न बनी। यह भी संभव है कि मानव-सुलभ अन्य लक्षणों, जैसे अधिक चपटा चेहरा, अधिक समतल दांत और बड़े आकार के दिमाग आदि का विकास भी उसी दौरान हुआ हो जब आदिम बंदर स्वयं को धरती पर अधिक कठिन और प्रतिकूल जीवन के अनुरूप ढाल रहा था। उन्होंने सीधे होकर चलना सीखा और जो भी चीज हाथ लगी वह खानी पड़ी। इसी बीच उन्होंने दूसरों के साथ अपना भोजन बांटकर खाना सीखा। ये सब मानव की ही विशेषताएं हैं।

किंतु हमें यह मानना पड़ेगा कि ये सब बौद्धिक अनुमान हैं। लगभग 2 करोड़ 60 लाख वर्षों तक हमें जीवावशेषों का रिकार्ड नहीं मिल पाया है (*रामपिथेकस* और कुछ अन्य बंदर जैसे जीवों को छोड़कर)। यह रिकार्ड उन बातों पर प्रकाश डाल सकता था, जिनके कारण हमें सबसे आदिम बंदर *एजिप्टोपिथेकस* से आदिम मानव जैसे प्राणियों के आविर्भाव का पता चल पाता।

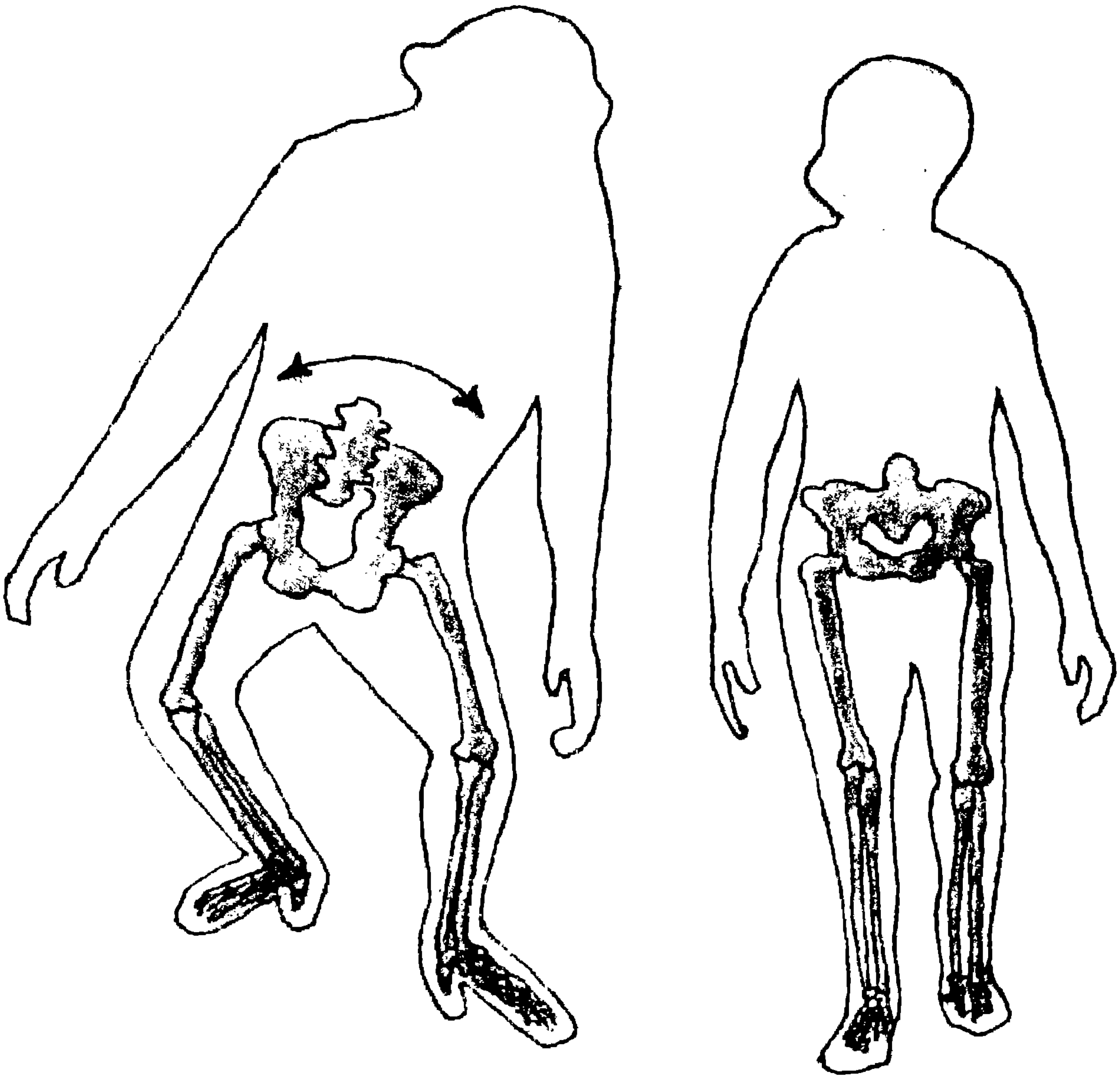
हमारे सबसे आदिम पुरखों में से एक के जीवावशेष इथियोपिया के हदार नामक स्थान पर और तंजानिया के लायतोली नामक स्थान पर सत्तर के दशक में मिले थे। उनमें से एक विशेष जीवावशेष किसी वयस्क मादा का 32 लाख वर्ष पुराना कंकाल था। यद्यपि यह कंकाल अधूरा था, किंतु वह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण था। उसे 'लूसी' नाम दिया गया।

लूसी की खोज एक संयोग थी। नवंबर, 1974 में मानव-विज्ञानी डोनाल्ड जोहानसन और उनका दल इथियोपिया के अफार क्षेत्र में स्थित हदार नामक स्थान पर मानव पुरखों के अवशेषों की खोज कर रहा था। वे लगभग सारी उम्मीदें

छोड़ ही चुके थे, क्योंकि जो जीवावशेष उनके हाथ लगे वे जानवरों के थे—किसी बंदर या मानव के पुरखे के नहीं। ऐसे में एक दिन जब वे लोग अपने शिविर को लौटने वाले थे, तो जोहानसन की नजर अचानक एक लंबे हड्डी के टुकड़े पर पड़ी जो एक बाजू के टुकड़े जैसा दिखायी देता था। उसके बाद उन्होंने जल्दी-जल्दी एक के बाद एक कई टुकड़े खोज निकाले—इन टुकड़ों में एक खोपड़ी का हिस्सा, एक जांघ की हड्डी का टुकड़ा, कशेरुकाओं और कुछ पसलियों के टुकड़े, एक कूल्हे का हिस्सा और जबड़े के कुछ हिस्से शामिल थे। बस फिर क्या था ! ऐसा लगा जैसे वह स्थान अचानक जीवावशेष उगलने लगा हो। अगले कुछेक दिनों में हड्डियों के कई सौ टुकड़े खोज निकाले गये। जब उन टुकड़ों को बहुत मेहनत से एक दूसरे के साथ तालमेल बिठाते हुए जोड़ा गया, तो यह पता चला कि वे सब टुकड़े एक ही प्राणी के शरीर के थे और वह थी एक वयस्क मादा। जीवावशेषों से अनुमान लगाया गया कि लूसी छोटे कद की थी, उसकी ऊंचाई करीब एक मीटर थी, उसका वजन लगभग 30 किलोग्राम रहा होगा और वह दो पैरों के बल चलने में सक्षम रही होगी। वैज्ञानिकों ने इस मानव पुरखे को नाम दिया *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस*। *आस्ट्रालोपिथेकस* का शाब्दिक अर्थ होता है 'दक्षिणी बंदर'। चूंकि ये जीवावशेष अफार नामक क्षेत्र से मिले थे, इसलिए *एफारेंसिस* शब्द साथ में जोड़ दिया गया।

जो वैज्ञानिक मानव जाति के विकास की खोज में प्रयास कर रहे थे उनके लिए लूसी कई दृष्टियों से विशिष्ट खोज थी। वह उस समय तक ज्ञात आधुनिक मानव पुरखों का सबसे पुराना और सबसे अधिक पूर्ण नमूना था। इसके अलावा कूल्हे के एक हिस्से और जांघों की हड्डी के मिल जाने से इस बात की पुष्टि हो जाती थी कि लूसी सीधी होकर चलती थी। लूसी की जांघ की हड्डी का कोण ऐसा था कि उसकी टांगें उसके शरीर के ठीक नीचे अवस्थित थीं, जिनकी बदौलत वह आम बंदरों के समान एक से दूसरी तरफ झोंका खाये बिना चल सकती थी। एक और विशेषता थी कि लूसी के शरीर में उसके पैर का अंगूठा दूसरी उंगलियों की सीध में था—जो कि मानव पैरों की विशेषता है।

लूसी, अथवा यदि उसे उसकी सामान्य जाति के नाम से पुकारा जाये, तो *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* वास्तव में दो पैरों के बल चलती थी, इसकी पुष्टि 1978 में तंजानिया में लायतोली नामक स्थान पर उसी प्रकार के प्राणियों के पदचिह्नों के अवशेषों की खोज से हुई। लायतोली की सबसे महत्वपूर्ण खोज थी कुछ ऐसे पदचिह्न जिन्हें प्रारंभ में पुरा मानव-विज्ञानी ऐंड्रयू हिल ने ढूंढ़ निकाला था। श्री हिल ब्रिटिश मानव-विज्ञानी लुई एस बी लीके की पत्नी मेरी लीके के



मानव की जांघों की हड्डियों की बनावट (दायें) ऐसी होती है कि वह सीधे चल सकता है, जबकि बंदर की जांघों की हड्डी ऐसी होती है कि वह दो पैरों पर चलते समय एक से दूसरी तरफ झुकता हुआ चलता है।

साथ काम करते थे। दो व्यक्तियों की जोड़ी के साथ-साथ चलते हुए पैरों के निशान लगभग 48 मीटर की कुल दूरी तक सुरक्षित रह गये थे। पैरों के ये निशान 37 लाख वर्ष पहले ज्वालामुखी की गीली राख पर अंकित हो गये थे और बाद में राख के सूख कर कड़ा हो जाने पर कुछ और राख के नीचे दब गये थे। ये निशान आधुनिक मानव पदचिह्नों से लगभग मिलते-जुलते थे। उनमें मानव पैरों जैसी 'चाप' साफ दिखायी देती थी और अंगूठा आगे की तरफ था, जो बंदरों के पैरों में नहीं होता है।

बाद में इथियोपिया और दूसरे स्थानों पर उसी प्रकार के जीवावशेषों की खोज से वैज्ञानिकों को ऐसी पर्याप्त सामग्री मिल गयी, जिससे वे नयी-नयी खोजी गयी जातियों का एक कच्चा विवरण तैयार कर पाये। उनके अध्ययन से हमें

यह पता चलता है कि लूसी जैसी *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* मादाएं अपनी जाति के नर-जीवों की तुलना में छोटी थी। यही स्थिति अफ्रीकी बंदरों के नर-मादाओं में भी पायी जाती है। नर, मादाओं से लगभग दुगुने आकार के थे। उनके सिर छोटे और दांत लंबे थे। *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* जाति के नर बंदर का दिमाग केवल 400 मि.ली. आकार का था, जबकि उसकी तुलना में एक औसत आधुनिक मानव के दिमाग का आकार लगभग 1,350 मि.ली. होता है। जाहिर है कि लूसी और उसकी जाति के अन्य बंदरों का दिमाग इतना छोटा था कि उसमें स्पष्ट वाणी की क्षमता नहीं थी। इसलिए उस जाति के बंदर हमारी तरह बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर पाने में असमर्थ रहे होंगे।



आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस (बायें) मानवों (दायें) की तरह चल तो सकता था, किंतु वह पेड़ों पर चढ़ने में अधिक दक्ष था।

लूसी के कंधों, धड़ और अंगों का विस्तृत विश्लेषण करने पर पता चला कि यद्यपि वह और उसकी जाति के अन्य बंदर दो पैरों के बल चल सकते थे, किंतु संभवतः हम मानवों की तरह दौड़ नहीं सकते थे। लेकिन वे पेड़ों पर चढ़ने में दक्ष थे। इस प्रकार हालांकि *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* बंदरों में मानव जैसे बहुत से लक्षण थे, किंतु देखने में और शारीरिक आकार की दृष्टि से वे बंदरों से अधिक मिलते-जुलते थे और आम बंदर की तुलना में थोड़े अधिक चुस्त थे।

लूसी की खोज के एक वर्ष बाद 1975 में हदार में आदि-मानव जीवावशेषों का एक अच्छा खासा भंडार मिला। उस स्थान पर हर आयु के 13 बंदरों—नर व मादा, वयस्क और बच्चों—के अनेक जीवावशेष मिले जो टुकड़ों की शक्ल में थे। बचे रह गये वे जीवावशेष एक-दूसरे के साथ गड्डमड्ड हालत में पाये गये। ये अवशेष निश्चित रूप से एक ही परिवार के रहे होंगे। यह खोज 'प्रथम परिवार' के नाम से जानी जाने लगी। एक साथ कई बंदर कैसे इकट्ठे दफन हो गये, इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। इस बात की अधिक संभावना है कि किसी प्राकृतिक प्रकोप के कारण ऐसा हुआ होगा। हो सकता है वे किसी अचानक आयी बाढ़ में फंस गये हों। यह सबसे पहला प्रमाण था, जिससे यह पता चल पाया कि मानव के आदिम पुरखे समूह में विचरण करते थे।

यद्यपि लूसी एक उल्लेखनीय खोज थी, किंतु उसका चेहरा नहीं मिल पाया था। हदार में पाये गये *एफारेंसिस* के अवशेषों में भी कोई पूरी खोपड़ी नहीं मिल पायी थी, जिससे आमतौर पर मानव पुरखों के बीच विभिन्नता का सबसे अधिक पता चल पाता है। *एफारेंसिस* बंदर की पहली लगभग पूरी खोपड़ी हदार में डोनाल्ड जोहानसन दल द्वारा 1992 में खोजी गयी। उस स्थल पर खोपड़ी और अन्य हड्डियों के जो टुकड़े मिले, पहले तो वे किन्हीं अन्य जातियों के लगे। वे हड्डियां लूसी की हड्डियों से कहीं अधिक बड़ी थीं। परंतु गौर से जांच करने पर पता चला कि वे लूसी की हड्डियों के समान ही थीं—बस केवल उनसे बड़ी थीं। खोपड़ी निस्संदेह नर *एफारेंसिस* की थी। एक ही जाति के बंदरों के नर और मादाओं के बीच इस प्रकार का अंतर एक सामान्य बात है। खोपड़ी और हड्डियों के आकार से यह लगता है कि घनी मांसपेशियों वाले नर *एफारेंसिस* का कद लगभग 1.5 मीटर रहा होगा और यह मादा *एफारेंसिस* की तुलना में 30 सें.मी. अधिक लंबा और दो तिहाई अधिक भारी रहा होगा।

जीवावशेषों से हम अब तक जो कुछ जान पाये हैं, उसके आधार पर यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि लूसी और उसकी जाति के बंदरों को हदार की भूमि पर 30 लाख वर्ष पहले पाये जाने वाले हौबेड़ा और जैतून के पेड़ों के विरले

जंगल अच्छी तरह से रास आ रहे थे। फिर भी लूसी और उसकी जाति के बंदरों को जीवित रहने के लिए अलग-अलग किस्म की जगहों पर विचरण करना पड़ता था। उन्हें गिरीदार और अन्य फलों, कंद मूल और अन्य शाकाहारी भोजन में आने वाली कमी को संभवतः मांसभक्षी जंतुओं के बचे खुचे आहार और छोटे-छोटे शिकार पकड़कर पूरा करना पड़ता था। हो सकता है कि उन्होंने पत्थरों के औजारों को इस्तेमाल किया हो, किंतु वे औजार एकदम आदिम किस्म के रहे होंगे।

पहली नजर में तो ऐसा लगता है कि नर *एफारेंसिस* पत्थर के बने अपने आदिम औजारों से अफ्रीकी घास के मैदानों में चीते जैसे जंगली परभक्षियों और लकड़बग्घे तथा हर जगह मौजूद गिद्धों जैसे शवभक्षी जंतुओं का मुकाबला नहीं कर पाये होंगे। किंतु हाल में किये गये अध्ययनों से यह पता चलता है कि परभक्षी और शवभक्षी जब अपने शिकार का पूरा मांस खा चुकते हैं, तो उसके बाद भी जो कंकाल बचा रहता है (जैसे कि हिरण का) उसकी हड्डियों के भीतर इतनी मात्रा में पौष्टिक मज्जा बची रहती है, कि उससे दो वयस्क जंतुओं को भरपेट भोजन मिल सकता है। लूसी की जाति के बंदर अपने आदिम औजारों से हड्डियों को आसानी से तोड़कर उसमें से मज्जा प्राप्त कर लेते होंगे। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* में इतनी समझ जरूर रही होगी कि वे चीते जैसे परभक्षियों के खाने-पीने की आदतों को समझ पाये। आमतौर पर चीते अपने शिकार को पेड़ों की ऊंची जगह पर छिपाकर रख लेते हैं ताकि परभक्षी शिकार तक न पहुंच सकें। इस आदत की जानकारी होने पर एफारेंसिस बंदर कभी-कभी बढ़िया आहार के लिए ऐसे शिकार को चुरा लेते होंगे।

दो पैरों के बल चलने में सक्षम होकर *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* ने वाकई मानवत्व की तरफ 'पहला कदम' उठाया था, क्योंकि अब यह माना जाने लगा है कि दिमाग के आकार में जो वृद्धि हुई और जिसके परिणामस्वरूप हमारी मानव-जाति का लगभग एक लाख वर्ष पहले आविर्भाव हुआ, वह बाद की घटना है। जब औजार बनाने जैसे जटिल कार्यों के लिए 'हाथ' मुक्त हुए होंगे, तभी बेहतर और अधिक सक्षम दिमाग की जरूरत पड़ी होगी।

खड़े होकर दो पैरों के बल चल पाने की क्षमता मैदानों पर जीवन-यापन के लिए बहुत लाभकर सिद्ध होती है। उदाहरण के तौर पर इससे आसपास का दृश्य बेहतर दिखायी देता है और परभक्षियों के बारे में भी पहले से चेतावनी मिल जाती है। इससे भोजन तलाश करने में भी आसानी रहती है। इसके अलावा अब जो 'हाथ' मुक्त हो चुके थे उनसे भोजन को उठाकर दूसरी जगह ले जाना भी संभव हो गया—शायद परिवार के साथ मिलकर खाने के लिए। इससे 'औजारों'

और हथियारों का इस्तेमाल करना भी संभव हो गया। ये औजार और हथियार आगे चलकर बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। हाल में कुछ मानव-विज्ञानियों ने यह विचार व्यक्त किया है कि सीधा खड़े हो पाने की क्षमता हमारे प्राचीन पुरखों के लिए स्वयं को ऊष्णकटिबंधीय तेज धूप से बचाने में भी काफी सहायक सिद्ध हुई होगी, क्योंकि इस स्थिति में शरीर पर धूप चौपायी स्थिति की तुलना में काफी कम पड़ती है।

इस प्रकार लगभग 40 लाख वर्ष पहले मानव के सबसे आदिम पुरखों ने पर्यावरणी उथल-पुथल से बाध्य होकर वन-वृक्षों की शाखाओं के जीवन को छोड़कर मैदानों में एक अलग किस्म के जीवन की शुरुआत की। जो बंदर दो पैरों के बल चल सकते थे, वे नयी व्यवस्था में, दूसरों की तुलना में बहुत ज्यादा लाभदायक स्थिति में थे और उन्हीं के उत्तरवर्ती ही जिंदा रह पाये और उन्होंने अधिक कुशलता हासिल करके मानवत्व की ओर अग्रसर होना जारी रखा। *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* जाति के बंदर लगभग 10 लाख वर्ष तक अपने अस्तित्व को बनाये रख पाये। उसके बाद लाभग 28 लाख वर्ष पहले जीवावशेषों के रिकार्ड में उनके निशान खत्म हो गये।

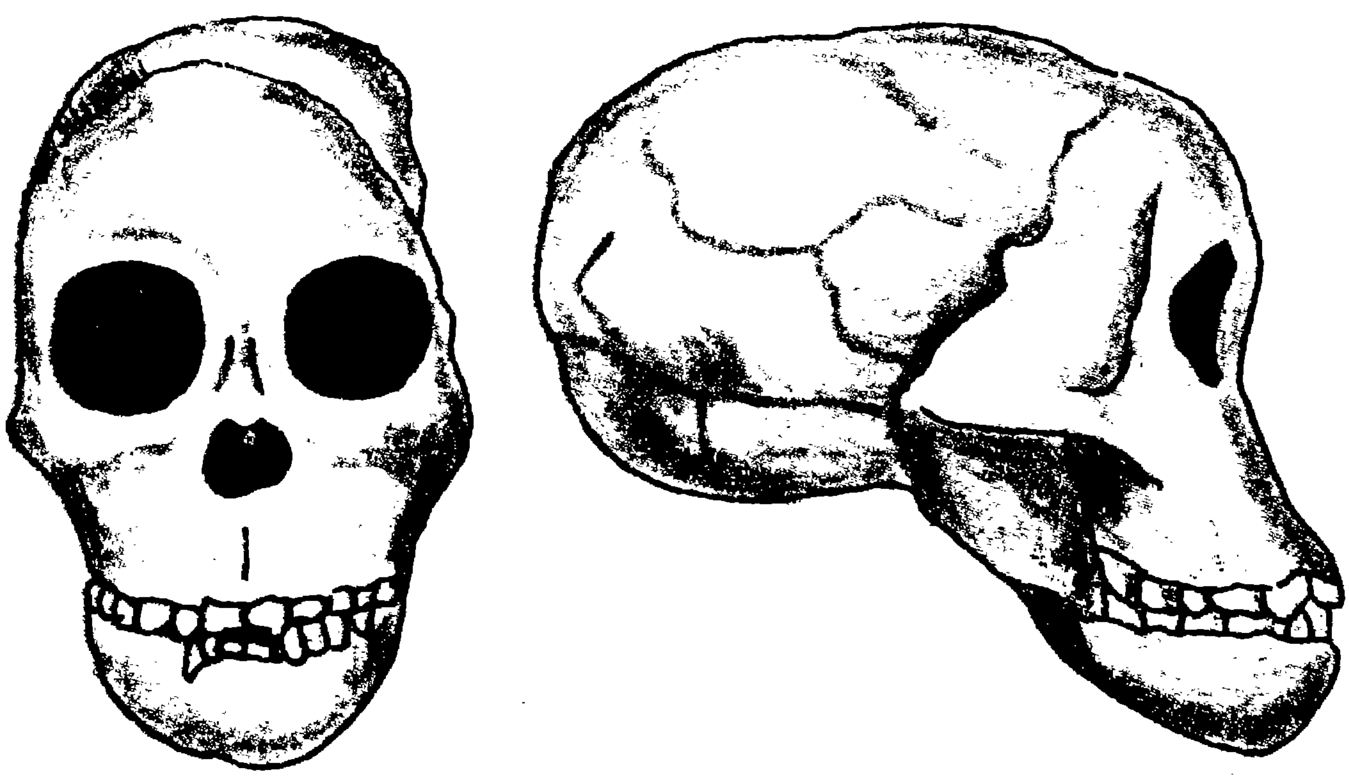
1994 तक लूसी और उसकी जाति के बंदर, दो पैरों पर चलने वाले मानव के सबसे पुराने पुरखे माने जाते थे। किंतु केन्या में तुरकाना झील के पास कनापोई नामक स्थल पर रिचर्ड लीके (लुई एस.बी. लीके के पुत्र) की पत्नी मीव लीके और उनके दल द्वारा नये जीवावशेषों की खोज के पश्चात यह परिकल्पना बदल गयी। इस स्थल से एक 41 लाख वर्ष पुराने जबड़े और टांग की हड्डियों के टुकड़े बरामद हुए। दांतों के आकार से यह पता चलता था कि ये दांत किसी ऐसे प्राणी के रहे होंगे, जो बंदर की अपेक्षा मानव से अधिक मिलता-जुलता रहा होगा। टांग की हड्डियों से यह स्पष्ट संकेत मिलता था कि वे दो पैरों के बल चलने वाले जंतु की थीं। इस नयी-नयी पायी गयी अधिक पुरानी प्रजाति का नाम *आस्ट्रालोपिथेकस एनामेनसिस* नाम दिया गया है।

इससे भी अधिक प्राचीन मानव के एक और ऐसे पुरखे के जीवावशेष 1994 में खोज निकाले गये जो दो पैरों पर चलता था। ये अवशेष इथियोपिया के अरामिस नामक स्थान पर एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन दल द्वारा पाये गये। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के पुरा-मानवविज्ञानी टिम व्हाइट इस दल के मुखिया थे। 44 लाख वर्ष पहले की इस प्रजाति को *अरीडीपिथेकस रेमिडस* नाम दिया गया है। अफार भाषा में रेमिडस का अर्थ होता है 'मूल'।

यद्यपि लूसी और उसकी जाति के बंदर दो टांगों पर चलते थे, किंतु वे

मानव बनने से अभी बहुत दूर थे। वे मूल बंदरों और आधुनिक मानव के बीच की अवस्था में थे। लूसी के बाजू उसकी टांगों के लिहाज से हमारी तुलना में अधिक लंबे थे, किंतु वे बंदर के बाजुओं जितने लंबे नहीं थे। अब यह माना जाने लगा है कि यद्यपि आधुनिक मानव के सबसे पुराने पुरखे भले ही *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* ही रहे हों, किंतु असली मानव जाति का आविर्भाव 20 लाख वर्ष पहले नहीं हुआ होगा। इस बीच की अवधि में *आस्ट्रालोपिथेकस* की तीन अन्य जातियों का आविर्भाव हुआ। इन तीनों जातियों के जीवावशेष खोज निकाले गये हैं।

लूसी की खोज से पहले 1924 में दक्षिणी अफ्रीका के टौंग नामक स्थान पर एक चूना-पत्थर की खान में एक महत्वपूर्ण जीवावशेष खोद निकाला गया। वह था एक बंदर जैसे जीव की खोपड़ी का एक हिस्सा। इसके खोजकर्ता थे दक्षिण अफ्रीका स्थित विल वाटरसैंड में शरीर रचना-विज्ञान विभाग के अध्यक्ष श्री रेमंड डार्ट। श्री डार्ट ने उन जीवावशेषों में तुरंत कुछ ऐसी विशिष्टताओं को भांप लिया, जिनके बारे में उन्होंने यह सोचा कि वे मानव-सुलभ विशिष्टताएं हैं। उन्होंने अपनी खोज का विवरण फरवरी, 1925 में ब्रिटिश विज्ञान पत्रिका 'नेचर' में प्रस्तुत किया। इस विवरण में उन्होंने यह उल्लेख किया कि उक्त जीवावशेष मानव के उस आदिम पुरखे के थे, जो खड़ी अवस्था में चलता था। इन्होंने इसे *'आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस'* अर्थात 'अफ्रीका का दक्षिणी बंदर' नाम दिया।



दक्षिण अफ्रीका में टौंग नामक स्थान पर पायी गयी 'टौंग बच्चे' की खोपड़ी।

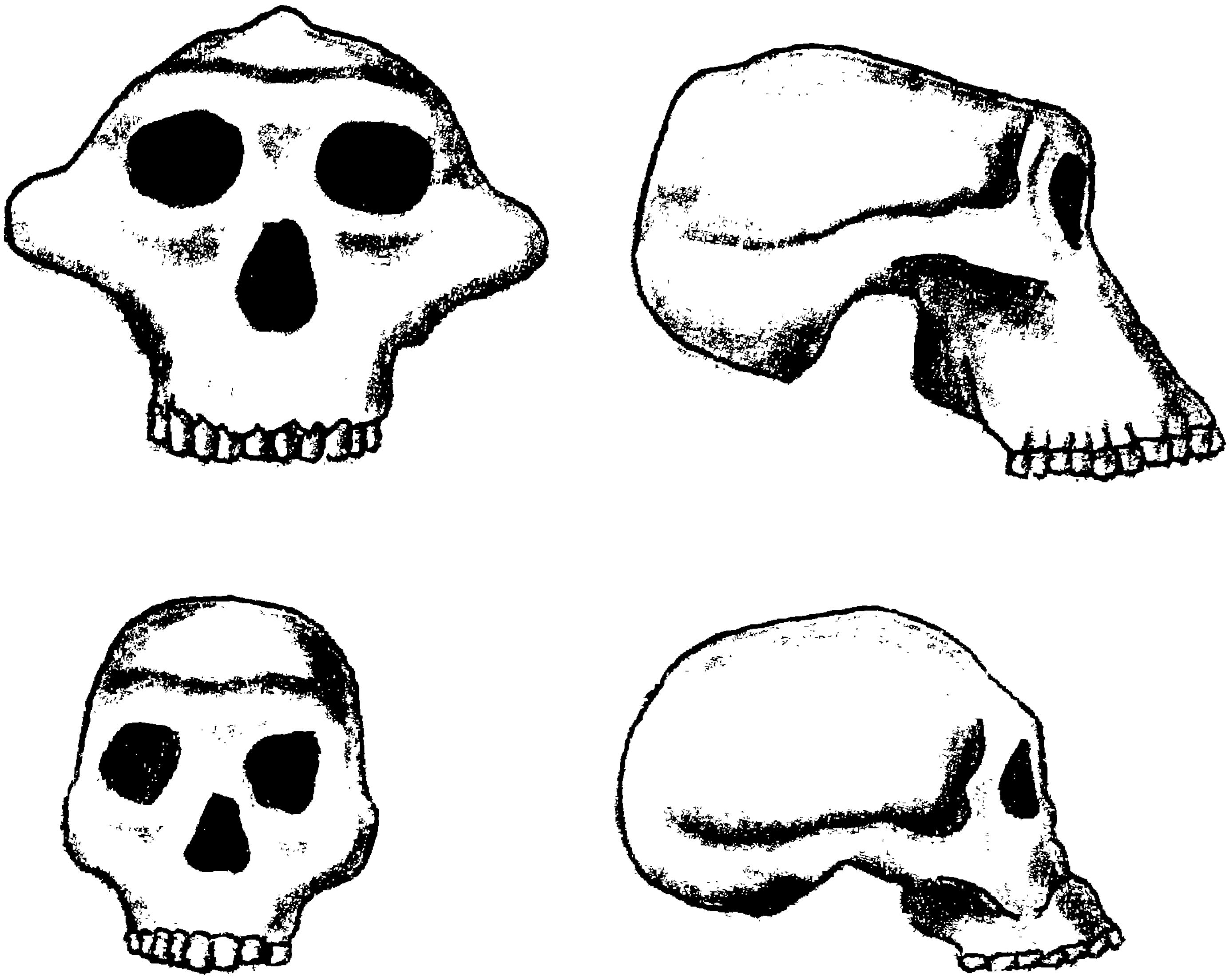
चूंकि यह खोपड़ी बच्चे की थी इसलिए वह जीवावशेष टौंग चाइल्ड अर्थात् 'टौंग बच्चा' के नाम से अधिक जाना जाने लगा।

1925 से पहले मानव पुरखों के सभी जीवावशेष यूरोप और एशिया से ही प्राप्त हुए और वे भी मुख्यतः नीएंडरतल मानव और *होमो इरेक्टस* के (जिसे तब *पिथेकेंथ्रोपस* नाम से जाना जाता था)। उस समय अधिकांश विशेषज्ञ यह मानते थे कि अफ्रीका को मानव उत्पत्ति के स्रोतों से कुछ खास लेना-देना नहीं है। इस डार्ट की टौंग बच्चे की खोज को प्रारंभ में शक की दृष्टि से देखा गया।

परंतु अंततः उसे मानव पूर्वज परंपरा का एक वैध सदस्य मान लिया गया। 'टौंग बच्चे' की खोपड़ी प्रारंभिक मानव पुरखे का अफ्रीका में प्राप्त पहला जीवावशेष थी। 'टौंग बच्चे' की खोपड़ी संभवतः दस लाख वर्ष से अधिक पुरानी नहीं थी। किंतु दक्षिण अफ्रीका के अन्य दो गुफा स्थलों से प्राप्त उसी प्रकार के जीवावशेषों से पता चलता है कि *आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस* संभवतः 30 से 20 लाख वर्ष पहले तक दृश्य पटल पर छाया रहा होगा।

यद्यपि *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* की तुलना में *आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस* के दांतों की बनावट और कुछ दृष्टि से दिमाग की बनावट मानव के दांतों और दिमाग से अधिक मिलती-जुलती थी, किंतु इन दोनों के शरीरों के आकार-प्रकार में कुछ अधिक अंतर नहीं था। उदाहरण के लिए *अफ्रीकनस, एफारेंसिस* की तुलना में कुछ अधिक बड़ा नहीं था, यद्यपि इसका 440 मि.ली. आकार का दिमाग थोड़ा-सा बड़ा था। फिर भी यह इतना छोटा और इतना कम विकसित था कि इसका मालिक इसकी बदौलत बोलने की क्षमता प्राप्त नहीं कर पाया होगा। *अफ्रीकनस* के पिछले दांत थोड़े बड़े और अगले दांत थोड़े छोटे थे।

आस्ट्रालोपिथेकस की तीसरी जाति के जीवावशेषों की खोज मात्र संयोग थी। 1938 में स्काटलैंड का एक डाक्टर तथा पुरा मानव-विज्ञानी राबर्ट ब्रूम दक्षिण अफ्रीका में जोहानसबर्ग के निकट स्कर्टफंटीन में चूना-पत्थरों की खानों की खुदाई के दौरान निकले जीवावशेषों के नमूने एकत्रित कर रहा था। ऐसे में संयोगवश उसकी निगाह एक ऊपरी जबड़े के हिस्से पर पड़ी जिसके साथ एक दाढ़ अभी तक लगी थी। उसके बाद जबड़े का बाकी हिस्सा एक स्कूली लड़का पास की पहाड़ियों में अपने गुप्त स्थान से ले आया था। इसमें चार दांत और नीचे का जबड़ा शामिल था। इस जबड़े में भी दो दांत जुड़े थे। इन सब टुकड़ों को मिलाकर एक ऐसी खोपड़ी का नक्शा सामने आया जो *अफ्रीकनस* से बिल्कुल अलग थी। नया चेहरा काफी बड़ा और चपटा था और उसके सामने के दांत अपेक्षाकृत छोटे थे किंतु उसके चबाने के दांत जो कि नीचे के मोटे और भारी जबड़े में जड़े थे



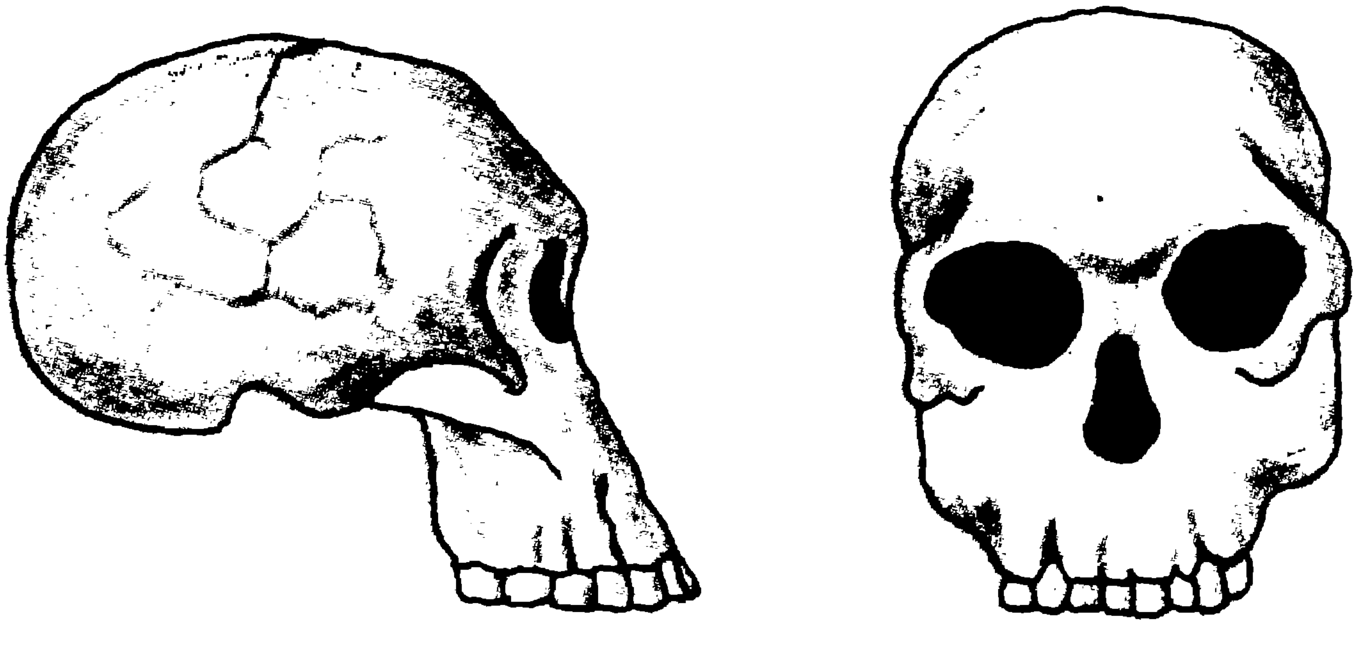
आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस (नीचे) की तुलना में *आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* (ऊपर) की बड़े आकार वाली और चपटी खोपड़ी।

काफी बड़े थे। उसके तगड़े आकार को ध्यान में रखते हुए, इस नयी जाति का नाम दिया गया *आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* (राबस्ट = तगड़ा)। यह अनुमान लगाया जाता है कि इस नयी जाति का बंदर अफ्रीक*नस* की तुलना में काफी मजबूत कद काठी का रहा होगा। इसका कद करीब 1.2 मीटर लंबा रहा होगा और यह अधिकतर मोटे किस्म के और सख्त आहार पर जीवन यापन करता होगा, जिसे चबाने की जरूरत पड़ती होगी जैसे कि गिरीदार फल, सख्त छिलकों वाले फल, रेशेदार मूल और कंद आदि। इसका दिमाग लगभग 530 मी.ली. आकार का था—अर्थात् वह *अफ्रीकनस* के दिमाग से बड़ा था।

स्कर्टफंटीन के आसपास की गयी खुदाई से न केवल *राबस्टस* जाति के लगभग 130 बंदर मिले हैं, बल्कि हड्डियों के कुछ औजार भी मिले जिनसे यह पता चलता है कि पत्थर के औजारों के आने से काफी पहले से ही हड्डी के औजार इस्तेमाल किये जाते रहे थे। जीवावशेषों से यह मालूम होता है कि *राबस्टस* का प्रादुर्भाव लगभग 20 लाख वर्ष पहले हुआ और 15 लाख वर्ष पहले यह जाति लुप्त हो गयी।

दक्षिण अफ्रीका में राबस्टस जीवावशेषों की खोज के 20 वर्ष से कुछ बाद इससे मिलते-जुलते प्राणी के जीवावशेष पूर्व अफ्रीका में मिले। जुलाई, 1959 में, उत्तरी तंजानिया के ओल्डवार्ड दर्रे में एक स्थान पर खुदाई करते समय मेरी लीके को दो बड़े-बड़े दांत और एक खोपड़ी का टुकड़ा मिला। उस स्थल पर बाद में खुदाई करने पर हड्डियों के चार सौ से भी अधिक टुकड़े मिले। जब इन टुकड़ों को तालमेल बिठाते हुए एक दूसरे के साथ जोड़ा गया, तो एक वयस्क खोपड़ी बनकर तैयार हुई जो कि उन खोपड़ियों से काफी मिलती-जुलती थी जो 1938 में दक्षिण अफ्रीका के स्कर्टफंटीन नामक स्थान पर मिली थीं। किंतु उनमें कुछ अंतर भी था। इस नये नमूने का जबड़ा, पहले नमूने की तुलना में अधिक लंबा-चौड़ा था। इसकी दाढ़ें भी ज्यादा बड़ी थीं। लुई लीके ने सोचा कि यह खोपड़ी किसी अन्य वर्ग के जीव की है, इसलिए उन्होंने इसके लिए एक नया नाम गढ़ा—*जिनजान्थ्रोपस बोयसेई*। किंतु आजकल यह *आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई* नाम से जाना जाता है। (यह नाम चार्ल्स बोयसे के नाम पर रखा गया था, जिन्होंने आदि मानव की खोज संबंधी लीके की बहुत सी खोज यात्राओं के लिए धन दिया था)।

आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई के न केवल जबड़े और दाढ़ें *आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* के जबड़ों और दाढ़ों से बड़ी थीं, बल्कि वह उसकी तुलना में अधिक लंबा भी था। उसका कद करीब 1.5 मीटर था। किंतु उसके दिमाग का आकार उतना ही था—लगभग 530 मि.ली.। अब यह मान लिया गया है कि दक्षिण अफ्रीका का *आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* पूर्व अफ्रीका के *आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई*



होमो हैबिलिस खोपड़ी का दिमाग उससे पहले की *आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस* जाति के दिमाग की अपेक्षा अधिक बड़ा है।

भौगोलिक विभेद हैं। उनके ढांचे के बीच जो अंतर था वह उनके एक दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग भौगोलिक स्थानों का निवासी होने के कारण था।

आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई के अवशेष अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं। केवल एक खोपड़ी, जांघ की हड्डी का एक छोटा-सा टुकड़ा और कुछेक दांत ही अब तक ओल्डुवाई नामक स्थल से प्राप्त हो पाये हैं, जो कि लगभग 18 लाख वर्ष पुराने हैं। एक और खोपड़ी केन्या में तुरकाना झील के पास 1969 में मिली थी।

अब धीरे-धीरे यह बात अधिक स्पष्ट हो चली थी कि लगभग 20 लाख वर्ष पहले इस धरती पर मानव के तीन अलग-अलग किस्मों के पुरखे वास करते थे—*आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस, आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* और *आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई*। ये अधिकतर झीलों या नदियों के किनारों के आसपास रहते थे। कुछ मानवविज्ञानियों का मानना है कि *रामपिथेकस* जाति की कुछ और आबादी भी इधर-उधर बिखरी हो सकती है। इन जातियों के अवशेषों को देखने से यह पता चलता है कि उत्तरोत्तर इनके दिमाग के आकार में वृद्धि होती चली गयी और इनके शरीर में कई ऐसे परिवर्तन होते चले गये, जिनके कारण वे अधिक से अधिक मानव जैसे दिखाई देने लगे। किंतु उनमें केवल एक जाति *आस्ट्रालोपिथेकस अफ्रीकनस* ही अंततः एक ऐसे बड़े दिमाग वाले प्राणी के रूप में विकसित हुई मानी जाती है जिसे *होमो हैबिलिस* नाम दिया गया है। यही आधुनिक मानव का असली मानव जैसा पुरखा माना जाता है।

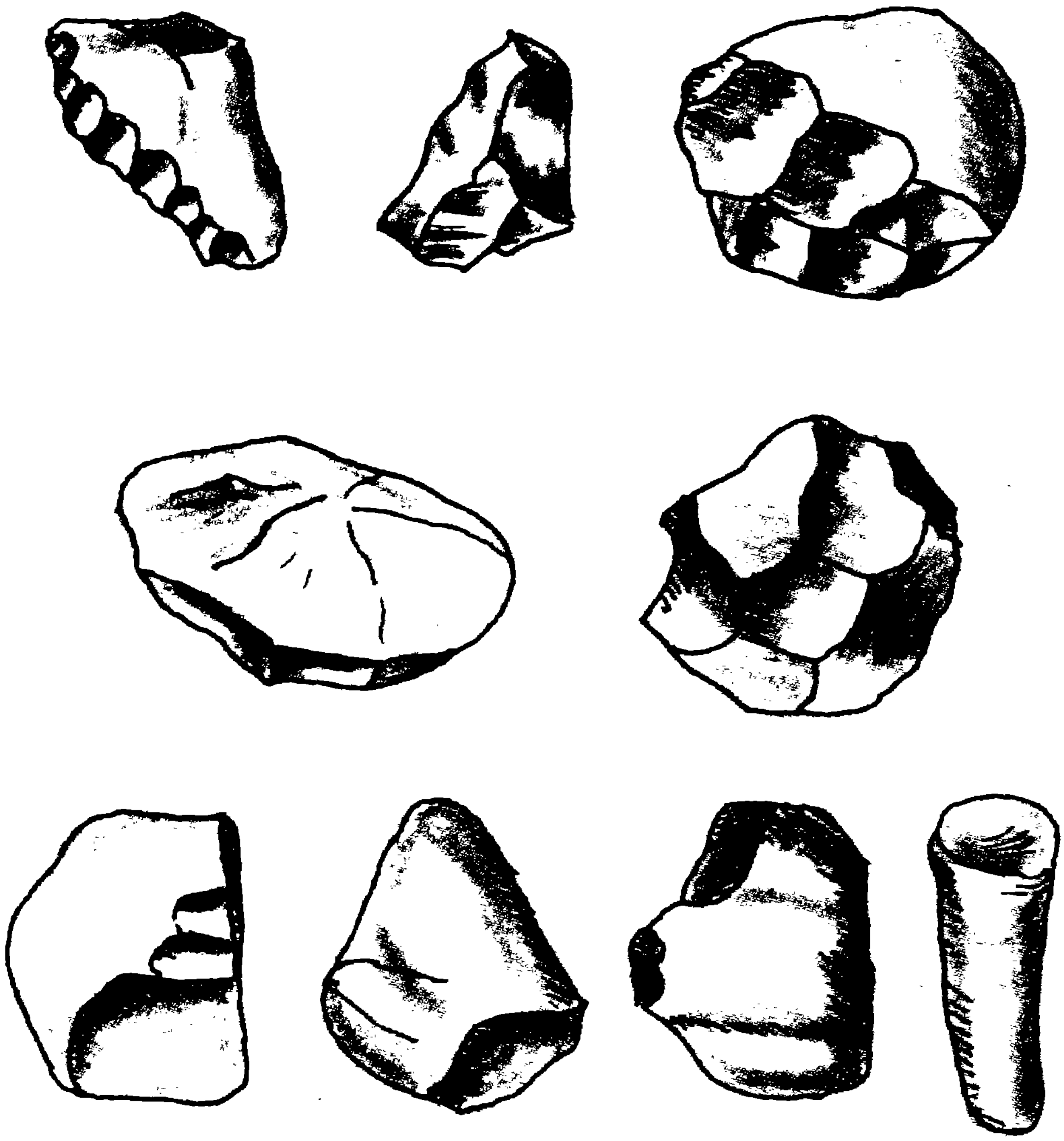
3

पहले औजार निर्माता

ओल्डुवाई दर्रा ज्वालामुखी पठार और पूर्वी अफ्रीका के सेरेंगेटी मैदानों को परस्पर जोड़ता है। वहां झील के किनारे एक पौधा उगता है जो अपने फूलों के लिए नहीं बल्कि उसके औषधीय गुणों के लिए विख्यात है। इस पौधे का नाम है संसावेरिया किंतु इसे ओल्डुवाई के स्थानीय नाम से पुकारा जाता है। इस दर्रे का नाम भी इसी पौधे के नाम पर रखा गया है। आज भी ओल्डुवाई का भू-दृश्य बहुत कुछ वैसा ही है जैसा कि प्राचीन मानव को 20-30 लाख वर्ष पहले दिखाई देता रहा होगा। केवल अंतर इतना है कि दर्रे के मध्य भाग में उस प्राचीन काल में एक झील हुआ करती थी। यहीं पर मिट्टी और ज्वालामुखी राख की अनावृत परतों के बीच *होमो हैबिलिस* के अवशेष मिले थे, जो मानव परिवार का पहला असली सदस्य था।

होमो हैबिलिस के जीवावशेषों के पहले टुकड़े ब्रिटिश पुरा-मानव-विज्ञानी और लुई एस.बी. के पुत्र रिचर्ड लीके और उनके दल द्वारा 1960 के आसपास खोज निकाले गये थे। लगभग इसी समय बोयसेई के जीवावशेष भी मिले थे। किंतु उस समय उनसे कोई ऐसा संकेत नहीं मिल पाया था, जिससे यह पता चल पाता कि वे जीवावशेष किस प्राणी से संबंधित थे। अप्रैल, 1969 में कहीं जाकर यह घोषित किया गया कि 18 लाख वर्ष पुराने वे टुकड़े एक ऐसे नये वर्ग के प्राणी के थे जिसके लक्षण बंदरों की अपेक्षा मानवों से अधिक मिलते-जुलते थे। रेमंड डार्ट के सुझाव पर इसका नाम *होमो हैबिलिस* अर्थात 'दक्ष मानव' रखा गया। यह नाम बिल्कुल उपयुक्त था, क्योंकि उसी स्थल पर पत्थर के आदिम औजार भी मिले थे, जिनसे यह पता चलता था कि *होमो हैबिलिस* औजार बनाने में वाकई दक्ष रहा होगा।

यद्यपि *हैबिलिस* के मूल जीवावशेष तंजानिया स्थित ओल्डुवाई दर्रे में मिले थे, किंतु उसके सबसे अच्छे नमूने बाद में केन्या की तुरकाना झील के किनारे स्थित कूबी फोरा में मिले। वहां 1972 में रिचर्ड लीके के दल ने *होमो हैबिलिस*



होमो हैबिलिस द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले पत्थर के औजार।

की जो खोपड़ी खोज निकाली, वह अपने आप में इतनी पूरी थी कि उससे पहले उतनी पूरी खोपड़ी कभी नहीं मिली थी। इसके अलावा अन्य जंतुओं के जीवावशेष और पत्थर के औजार भी मिले।

कूबी फोरा में पायी गयी *हैबिलिस* की खोपड़ी पर सरसरी निगाह डालने से ही यह विश्वास हो गया था, कि वह बंदर की खोपड़ी से कम और मानव की खोपड़ी से अधिक मिलती थी। *होमो हैबिलिस* का चेहरा किसी भी *आस्ट्रालोपिथेकस* जाति के बंदर की तुलना में ज्यादा चपटा और दिमाग उसके दिमाग से काफी बड़ा 680 मि.ली. आकार का था। फिर भी यह आज के औसत मानव दिमाग से आधा था। इस प्रकार *होमो हैबिलिस* मानव के किसी भी अन्य बंदर जैसे प्राचीन पुरखे की तुलना में अधिक बुद्धिमान रहा होगा। किंतु जो बात

ज्यादा महत्वपूर्ण है, वह यह कि *हैबिलिस* का दिमाग न केवल बड़ा था बल्कि किसी भी *आस्ट्रालोपिथेकस* जाति के बंदर के दिमाग की तुलना में अधिक जटिल भी था।

खोपड़ी के आकार और उसकी भीतरी सतह पर बने निशानों से मस्तिष्क विशेषज्ञों ने *हैबिलिस* के मस्तिष्क में एक ऐसे खास हिस्से को पहचाना है जो मानव मस्तिष्क के उस हिस्से से मिलता-जुलता है जिसे ब्रोका क्षेत्र कहते हैं और जो वाणी के लिए अनिवार्य होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि यद्यपि *होमो हैबिलिस* का दिमाग मानव से आधे आकार का था, फिर भी संभवतः उसमें कुछेक सरल 'शब्द' बोल पाने की क्षमता अवश्य थी किंतु अधिक शब्द बोल पाने की नहीं।

जीवावशेषों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि केवल दिमाग का आकार ही प्राचीनतम मानव-पुरखों के अच्छा वक्ता बनने में बाधा नहीं बना हुआ था। साफ-साफ बोल पाने के लिए आवश्यक आवाज पैदा करने वाला उपयुक्त क्षेत्र भी उनके पास नहीं था। *होमो हैबिलिस* का स्वर यंत्र गले में इतना ऊंचा स्थित था कि ग्रसनी (फेरिक्स) में बहुत कम जगह बच रहती थी। (देखें अध्याय 6)। उसकी तुलना में हमारी मानव जाति के गले में स्वर-यंत्र काफी नीचे की ओर होता है जिससे ग्रसनी में काफी जगह उपलब्ध रहती है, जिसके कारण ध्वनि-उत्पादन के लिए काफी गुंजाइश पैदा हो जाती है।

फिर भी मानवत्व को प्राप्त करने के टेढ़े-मेढ़े रास्ते में *होमो हैबिलिस* का आविर्भाव मानव विकास प्रक्रिया में एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इससे पहले मिलने वाले *आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* और *आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई,* ज्यादातर बंदर जैसे ही थे जो बहुत ही आदिम किस्म की जिंदगी बसर करते थे। वे साफ-साफ बोल नहीं सकते थे। उनके पास औजार और हथियार भी बहुत ही घटिया किस्म के थे और संभवतः मांसरहित आहार पर जिंदा रहते थे। उनकी तुलना में *होमो हैबिलिस* की दिमागी ताकत काफी ज्यादा थी, जिसके कारण न केवल बोलने की शुरुआत हो गयी थी बल्कि पत्थर के औजारों के सभी बड़े-बड़े लाभ भी उनको मिल पाये।

हैबिलिस स्थलों पर जिस किस्म के औजार मिले हैं, उनसे एक बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि *होमो हैबिलिस* इतना बुद्धिमान अवश्य था कि वह औजार बनाने के लिए 10-15 किलोमीटर तक की दूरी से, सही किस्म के पत्थर इकट्ठे कर लाता था और ध्यानपूर्वक उन्हें अलग-अलग आकार देता था। हाथों से पत्थरों के चिप्पड़ तोड़-तोड़कर जिस तरह से औजारों को आकार दिया जाता था, उससे

यह पता चलता है कि मानव जैसे प्रथम औजार निर्माता अधिकतर दायें हाथ से काम लेते थे। वे संभवतः हमारे प्राचीनतम पुरखे रहे होंगे, जिनके बारे में यह पता चल पाया है कि वे मांस खाते थे। जीवावशेष स्थलों पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनके बीच सामूहिक कार्यकलाप या कोई सामाजिक संगठन जैसा रहा होगा। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि *होमो हैबिलिस* के सामने ही धार्मिक अनुष्ठानों और लोकवार्ता की शुरुआत हुई होगी—जो खासतौर पर मानवीय व्यवहार है।

हैबिलिस स्थलों से प्राप्त पत्थरों के औजारों के नमूने देखने पर ऐसा लगता है कि ये औजार काफी उपयोगी रहे होंगे। बड़े पत्थरों से छोटे-छोटे तेज किनारों वाले चिप्पड़ तोड़-तोड़कर औजार बनाये जाते थे जिनसे मरे हुए पशुओं की हड्डियों से मांस को काटा जा सकता था। पत्थरों के बने उसी प्रकार के आदिम औजारों का इस्तेमाल करके वैज्ञानिक न केवल मरे हुए हाथी की खाल उतार पाये हैं बल्कि उसके मांस को भी काटने में सफल रहे हैं। *हैबिलिस* स्थलों पर पशुओं के जीवावशेषों की हड्डियों के टुकड़ों पर जो बारीक कटाव-निशान देखे गये हैं उनसे यह प्रकट होता है कि ये पत्थर वस्तुतः मांस काटने के लिए इस्तेमाल किये जाते थे। *होमो हैबिलिस* के निवास स्थलों पर पशुओं की जितनी हड्डियां मिली हैं, उनसे यह जाहिर होता है कि वे न केवल शिकार करने का प्रयास करते थे, बल्कि शिकार करने में उन्हें कामयाबी भी मिलती थी। हमारे पास ऐसे स्पष्ट प्रमाण तो नहीं हैं जिनसे यह पता चल सके कि *होमो हैबिलिस* ने शिकार करने के लिए क्या-क्या तरीके अपनाये होंगे। संभवतः वे उन पर डंडे का वार करके या उनमें नोकदार औजार भोंककर उन्हें मार डालते थे।

स्थलों पर जमा हुए अवशेषों से यह पता चलता है कि हमारे प्राचीन पुरखे मरे हुए पशुओं को किसी एक स्थान पर लाकर अपने औजारों से उसके मांस को काटा करते थे। किंतु इस बात की संभावना दिखाई नहीं देती कि उन्होंने भोजन के लिए बड़े-बड़े पशुओं का शिकार किया हो। उनके औजार इतने आदिम किस्म के थे, कि ऐसा करना उनके लिए संभव नहीं था।

ओल्डुवाई और कूबी फोरा में जो जीवावशेष मिले हैं, उनके आधार पर हम एक संभावित परिवेश की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें *होमो हैबिलिस* विचरण करते रहे होंगे। ओल्डुवाई का दैनिक जीवन मानव विकास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी है। हमारे ये प्राचीनतम पुरखे एक ऐसी भूमि पर विचरण करते थे, जहां उनके साथ-साथ अन्य बहुत से पशु-पक्षी भी निवास करते थे, जैसे हिरण, सुअर, पक्षी, बाघ और हाथी जो 18 लाख वर्ष पहले की स्वास्थ्यकर जलवायु में खूब फले फूले। यह जलवायु आज के झुलसे हुए मैदानों की तुलना में काफी

ठंडी और नम थी। सभी नर-वानरों की तरह *होमो हैबिलिस* भी मुख्यतः रसदार और अन्य फलों तथा कंदमूलों के ही आहार से गुजारा किया करते थे। इन कंदमूलों को वे नोकदार हड्डियों या पत्थरों के औजारों से खोद निकालते थे। इसके अलावा उनके आहार में कच्चा मांस भी शामिल होता था जिसे वे संभवतः अन्य मांसभक्षी पशुओं के शिकार के बचे-खुचे हिस्से से हासिल करते थे।

यद्यपि वे पहले के बंदरों की अपेक्षा अधिक उद्यमी थे, किंतु *होमो हैबिलिस* संभवतः मांसभक्षी पशुओं से बचने के लिए पेड़ों पर ही अपने घर बनाया करते थे। यह जानकारी हमें उनके कंकाल अवशेषों से मिलती है। इन कंकालों से यह पता चलता है कि *होमो हैबिलिस* के बाजू लंबे थे जो कि पेड़ों पर चढ़ने के लिए काफी अभ्यस्त थे।

जीवावशेषों के अध्ययन से *होमो हैबिलिस* के बारे में कुछ अन्य रोचक तथ्य भी सामने आये हैं। दांतों की बनावट से पता चलता है कि ओल्डुवाई में पारिवारिक जीवन मानवों की अपेक्षा बंदरों से अधिक मिलता-जुलता था। अवशेषों से यह भी पता चलता है कि *हैबिलिस* के बच्चों का विकास आधुनिक मानव बच्चों की तुलना में दुगुनी तेजी से होता था। इसका यह भी अर्थ है कि हमारे प्राचीन पुरखे 12 वर्ष की उम्र तक आते-आते वयस्क हो जाते होंगे और किशोरावस्था तक माता-पिता बन जाते होंगे और 30 वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक बूढ़े हो जाते होंगे।

ओल्डुवाई और कूबी फोरा में मिले अवशेषों के बारे में एक रोचक तथ्य यह है कि जिन-जिन स्थानों पर *होमो हैबिलिस* के अवशेष पाये गये हैं, उन्हीं स्थानों पर *आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई* के अवशेष भी मिले हैं। ये अवशेष भी उतने ही पुराने हैं, जितने कि *हैबिलिस* के। इससे यह स्पष्ट होता है कि *आस्ट्रलोपिथेकस बोयसेई* भी उसी काल में और संभवतः उसी भू-भाग में रहते थे, जिसमें कि *होमो हैबिलिस* । किंतु इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि वे दोनों एक दूसरे के साथ कैसे गुजारा करते थे या क्या आहार को लेकर उन दोनों के बीच कोई प्रतिस्पर्द्धा थी। वैसे इस प्रतिस्पर्द्धा की संभावना नहीं लगती। *होमो हैबिलिस* के पास ज्यादा बौद्धिक शक्ति और उसके साथ-साथ पत्थरों के औजार होने के कारण, उनके पास अधिक आदिम *आस्ट्रालोपिथेकस बोयसेई* की तुलना में ज्यादा किस्मों के भोजन हासिल कर पाने की क्षमता रही होगी। तभी यह अधिक उन्नत *होमो हैबिलिस* बाकी जातियों के बंदरों को राह में पीछे छोड़ता हुआ मानवत्व को प्राप्त करने के सीधे मार्ग पर अग्रसर हुआ होगा।

किंतु यह अब एक स्वीकृत तथ्य है कि *होमो हैबिलिस* का आविर्भाव मानव

विकास की कहानी में एक नया मोड़ लेकर आया। एक साधारण बंदर के मानवत्व की ओर बढ़ने की दिशा में यह एक मील का पत्थर साबित हुआ। *होमो हैबिलिस* का आविर्भाव कैसे हुआ ? जिस उग्र पर्यावरणी परिवर्तन के कारण इससे पहले आदिम बंदर जंगलों से निकलकर मैदानी जीवन के आदी हो गये थे, संभवतः उसी प्रकार का उग्र पर्यावरणी परिवर्तन ही *होमो हैबिलिस* बंदरों के आविर्भाव का कारण रहा होगा। जलवायु संबंधी आंकड़ों से ही इस बात की पुष्टि हो जाती है कि वास्तव में *होमो हैबिलिस* के प्रकट होने का कारण उग्र पर्यावरणी परिवर्तन ही रहा होगा। रिकार्डों से यह पता चलता है कि लगभग 60 लाख वर्ष पहले दुनिया भर में बर्फ जम जाने के बाद, जलवायु में एक बार फिर गर्मी आयी थी। किंतु लगभग 25 लाख वर्ष पहले तापमान फिर से गिर गया जिसके परिणामस्वरूप थोड़े समय के लिए हिम-युग का पुनरागमन हुआ।

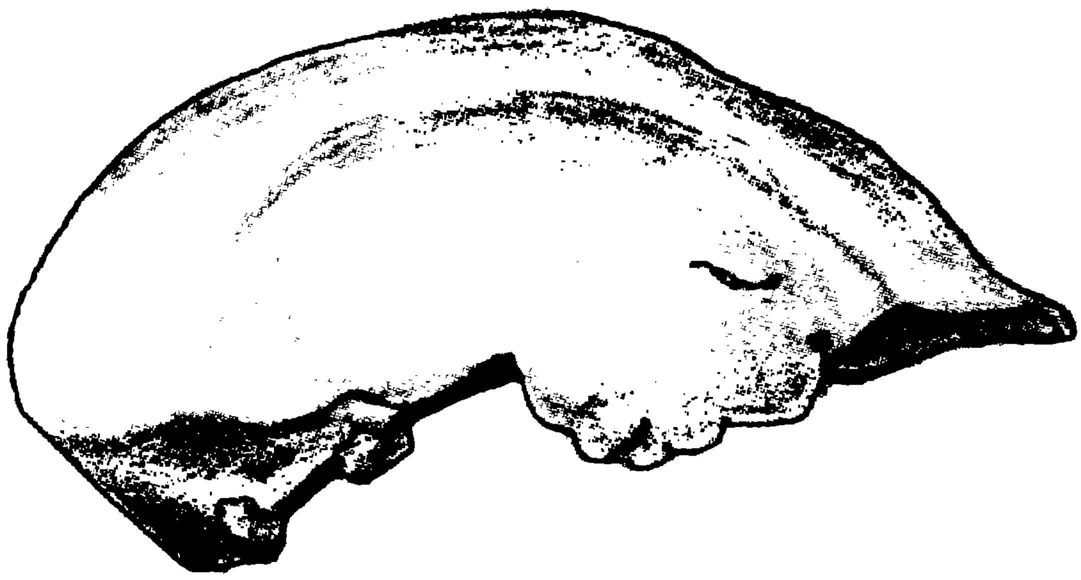
अब यह माना जाता है कि इसी अवधि के दौरान मानव के आदिम पुरखे दो अलग-अलग शाखाओं में बंट गये। उनमें से एक शाखा *आस्ट्रालोपिथेकस राबस्टस* के रूप में विकसित हुई और दूसरी शाखा *होमो हैबिलिस* के रूप में, आगे चलकर जिसका सीधा विकास आधुनिक मानवों के रूप में हुआ। सबसे पुराने होमो जीवावशेष की खोज 1996 में हुई। इथियोपिया में हदार नामक स्थान पर 1994 में 23 लाख वर्ष पुराना एक जबड़े का अवशेष मिला था। इसे अमरीका के केलीफोर्निया स्थित इंस्टीट्यूट आफ ह्यूमन ओरिजिन्स, बर्कले के विलियम किम्बल के नेतृत्व में कार्यरत एक दल ने एक सूखी नदी के पास से खोज निकाला था। 15 लाख वर्ष पहले जब *होमो हैबिलिस* लुप्त हुआ तब तक एक नया और अधिक उन्नत मानव पुरखा, दृश्य-पटल पर प्रकट हो चुका था। इसे नाम दिया गया *'होमो इरेक्टस'* अर्थात् 'सीधा खड़ा होने वाला मानव'। बड़े दिमाग वाला हमारा यह पुरखा काफी घुमक्कड़ था। यह पहला प्राचीन मानव था, जो अफ्रीकी महाद्वीप से बाहर निकलकर पूरे विश्व में अपनी जाति का प्रसार करने लगा।

4

नये क्षितिजों की तलाश

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में दक्षिण-पूर्व एशिया के जावा द्वीप में एक असामान्य जीवावशेष खोज निकाला गया जो मानव की उत्पत्ति संबंधी हमारी खोज यात्रा में आगे चलकर एक ऐतिहासिक घटना सिद्ध हुआ। यह खोज डच शरीर शास्त्री इयूजीन दुबोय द्वारा की गयी। दुबोय में 1880 के दशक के उत्तरार्द्ध में मानव के असली पुरखे को खोज निकालने का जोश जागा जो कि बंदरों और आधुनिक मानव के बीच एक 'लापता कड़ी' के रूप में रहस्य बना हुआ था। उस समय तक जीवाश्म मानव संबंधी केवल लगभग आधा दर्जन खोजों के बारे में जानकारी उपलब्ध हो चुकी थी किंतु उनमें से कोई भी खोज ऐसी नहीं थी जिसे बंदरों और आधुनिक मानव के बीच की 'लापता कड़ी' माना जा सकता। दुबोय को जर्मन प्राणी-विज्ञान अर्न्स्ट हायकल, जो कि डार्विन के विचारों के प्रबल समर्थक थे, के लेखों से प्रेरणा प्राप्त हुई थी। हायकल का यह तर्क था कि चूंकि मानवों और बंदरों के बीच निकट संबंध है, इसलिए यदि वास्तव में मानवों का विकास बंदरों से हुआ है, तो उन दोनों के बीच कोई न कोई कड़ी जरूर होगी। उन्होंने बंदरों और मानवों के उस मध्यवर्ती रूप को नाम तक दे दिया था और वह नाम था *पिथेकेंथ्रोपस* जिसका अर्थ होता है 'बंदर जैसा मानव'। उन्होंने यहां तक संकेत दे दिया कि ऐसे प्राणी के जीवावशेष कहां मिल सकेंगे। वह जगह थी मलाया द्वीप समूह की 'अस्थि गुफाएं'। 1887 में दुबोय मन में यह संकल्प लेकर समुद्री मार्ग से डच पूर्वी भारत की ओर रवाना हो गये कि वह जीवाश्म वानर-पुरुष के अवशेष ढूंढ़कर ही रहेंगे।

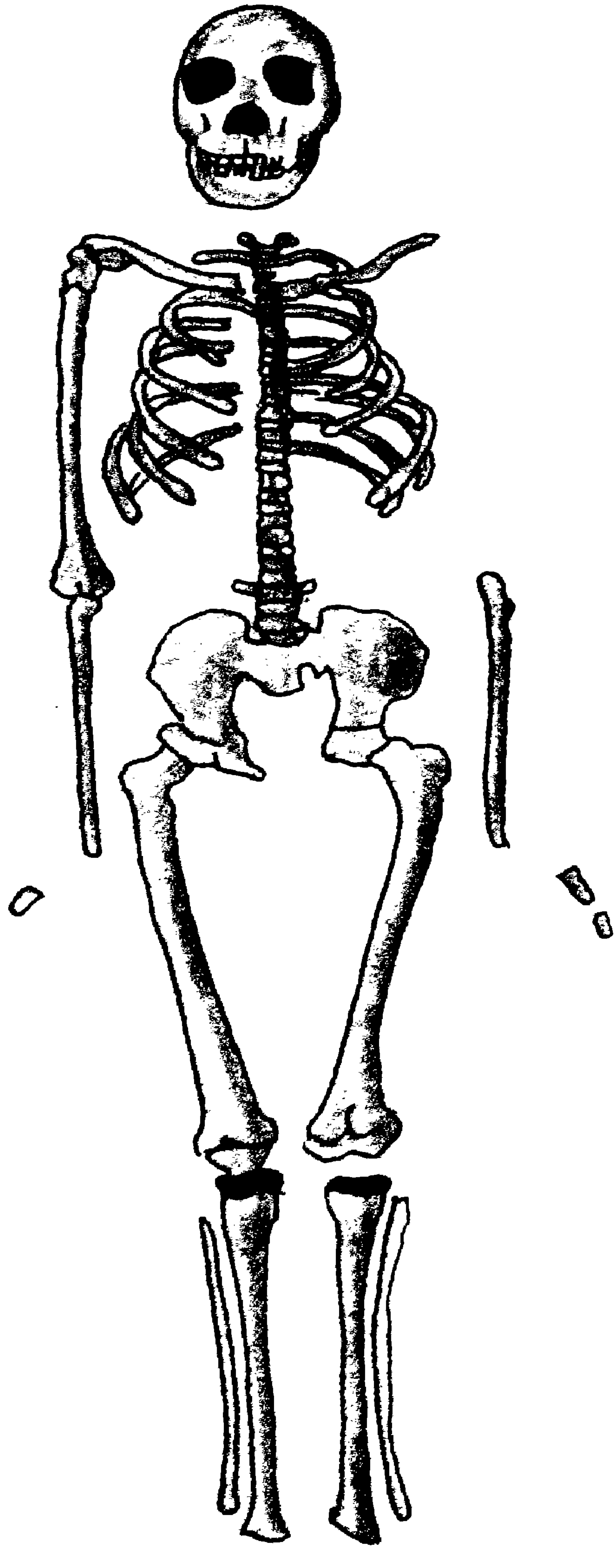
1889 में जावा पहुंचने के दो वर्ष बाद, दुबोय अपनी खोज पर निकल पड़े। 50 कैदी मजदूरों को लेकर उन्होंने सोलो नदी के किनारे-किनारे खुदाई आरंभ कर दी। 1891 में त्रिनिल गांव के पास दो महत्वपूर्ण जीवावशेष मिले—एक दांत और एक खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा। अगले वर्ष एक आधुनिक दिखाई देने वाली रान की हड्डी मिली, जो कि निश्चित रूप से किसी बंदर की नहीं थी। जीवावशेषों



पिथेकेंथ्रापस बंदर जैसे मानव की खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा जो कि इयूजीन दुबोय द्वारा जावा में खोजा गया।

की आयु लगभग 10 लाख वर्ष आंकी गयी। यह महसूस करते हुए कि यह खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा निश्चित रूप से किसी बड़े दिमाग वाले प्राणी का होना चाहिए और इस बात से आश्वस्त होकर कि वह दांत, खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा और रान की हड्डी किसी एक ही प्राणी की रही होगी, दुबोय को यह विश्वास हो गया, कि उसे उस प्राणी के जीवावशेष मिल गये हैं, जिसे हायकल ने 'लापता कड़ी' बताया था। उन्होंने इस प्राणी को नाम दिया *पिथेकेंथ्रोपस इरेक्टस,* क्योंकि उसकी रान की हड्डी की शक्ल से, अब किसी शक की गुंजाइश नहीं रह गयी थी कि बंदर जैसा यह मानव सीधा होकर चलता होगा। जनता के लिए इसे नाम दिया गया 'जावा मानव'। दुबोय ने यह दावा किया कि उनका जावा मानव वह संक्रमण रूप था, जो विकास संबंधी जानकारी के अनुसार 'मानव और बंदरों के बीच विद्यमान रहा होगा।' बाद में पास के स्थलों से *पिथेकेंथ्रोपस* के कई अन्य नमूने भी मिले।

चालीस वर्ष बाद चीन में डब्ल्यू. सी. पेई नामक पुरा-मानव-विज्ञानी को बीजिंग के निकट ज्हौकौदियान नामक गांव के पास एक बड़ी पहाड़ी में मौजूद चूना पत्थर की गुफा में दफन उसी प्रकार की खोपड़ी का ऊपरी भाग मिला। पेई की खोज को *सिनांथ्रोपस पेकिनेंसिस* नाम दिया गया जिसका अर्थ है 'पीकिंग का चीनी मानव'। पूरी जनता के लिए यह केवल 'पीकिंग मानव' कहलाया। पीकिंग मानव के जीवावशेष 10 लाख वर्ष से कम पुराने थे। आज अलबत्ता हम यह जानते हैं कि जावा मानव और पीकिंग (अब बीजिंग) मानव एक ही जाति के थे और वह था होमो इरेक्टस—अर्थात् सीधे होकर चलने वाले पहले मानव पुरखों और आधुनिक मानव के बीच की मध्यवर्ती जाति।



केन्या में खोजा गया *होमो इरेक्टस* का सबसे पुराना और सबसे पूरा नमूना 'तुरकाना बाय'।

होमो इरेक्टस का सबसे पुराना और सबसे पूरा नमूना केन्या में तुरकाना झील के पश्चिमी किनारे पर स्थित नारियोकोटोम नामक स्थान पर 1984 में मिला। यह खोज रिचर्ड लीके के दल द्वारा की गयी थी। यह एक ऐसे लड़के का लगभग पूरा, अलबत्ता टूटा-फूटा ढांचा था, जो 15 लाख वर्ष से भी पहले की एक पुरानी झील के किनारे मृत्यु को प्राप्त होने के समय अधिक से अधिक नौ वर्ष का रहा होगा।

तुरकाना लड़के के मरने के समय उसकी आयु का अंदाजा उसके दांतों की बनावट से लगाया गया। उसकी मृत्यु के समय उसकी दूसरी दाढ़ अभी निकल ही रही थी। आधुनिक मानव संतानों में ऐसा 11 वर्ष की आयु में और बंदरों के मामले में 7 वर्ष की आयु में होता है। चूंकि *होमो इरेक्टस* का स्थान कहीं इन दोनों के बीच में था इसलिए यह मान लेना वाजिब था कि उस लड़के की मृत्यु 9 वर्ष की आयु में हुई होगी।

नारियोकोटोम में तुरकाना लड़के के मिलने से पहले भी मानव विकास के इतिहास में *होमो इरेक्टस* का महत्व पूरी तरह से स्वीकार कर लिया गया था। किंतु इससे पहले जितने भी जीवावशेष मिले थे वे सब पूरे शरीर के कुछेक टुकड़े मात्र थे। जावा और पीकिंग मानव समेत विश्व के अलग-अलग हिस्सों से जिन 100 के लगभग बंदरों का पता चल पाया था उनमें से अधिकतर के तो जबड़ों और खोपड़ियों के टुकड़े ही मिल पाये थे और कुछेक की ही रानों की हड्डियों के टुकड़े मिले थे। इस प्रकार 1984 तक *होमो इरेक्टस* के पूरे शरीर के एक छोटे से अंश की ही जानकारी मिल पायी थी।

तुरकाना लड़के के लगभग पूरे कंकाल के मिल जाने से *होमो इरेक्टस* की शारीरिक बनावट के बारे में पहले जितने भी अनुमान लगाये जा रहे थे वे सब खत्म हो गये। दुबोय के समय से यह माना जा रहा था कि *होमो इरेक्टस* (पीकिंग और जावा मानव) 'एक उकड़ूं बैठने वाला भारी हड्डियों वाला और सशक्त मांसपेशियों वाला' प्राणी रहा होगा। तुरकाना लड़के से यह सारा विचार बदल गया। रिचर्ड लीके के दल सहयोगी एलन वाकर के अनुसार (जो कि कंकाल का अध्ययन करने वाले समूह का नेतृत्व कर रहे थे) वह लड़का बड़ा होकर पतला और लंबे कद का होता। यह लंबाई कम से कम 1.8 मीटर होती। उसका गठन 'उन लोगों से अधिक मिलता-जुलता था जो आज तुरकाना झील के आसपास रहते हैं। वे ऐसे लोग हैं जिनके लंबे और पतले अंग और शरीर, सूरज की बेरहम गर्मी के भार को सह पाने में सक्षम हैं।' इससे भी अधिक जो बात महत्वपूर्ण है वह यह कि तुरकाना लड़का, विज्ञान द्वारा ज्ञात प्राचीनतम मानव पूर्वज का

प्रतिनिधित्व करता था, जिसके सामान्य शारीरिक अनुपात जीवित लोगों के शारीरिक अनुपात से मेल खाते थे।

चेहरे-मोहरे से, *होमो इरेक्टस* अपनी पूर्ववर्ती प्रजाति *होमो हैबिलिस* से अलग नहीं था। उसके चेहरे के जबड़े भी आगे की तरफ निकले हुए थे। उसके ठुड्डी नहीं थी। भौंह की हड्डियां मोटी-मोटी थीं, खोपड़ी लंबी और बैठी हुई थी। हां उसके दांत कुछ छोटे थे। लेकिन जो चीज इसे अपनी पूर्ववर्ती प्रजाति से अलग करती थी, वह था इसका अपेक्षाकृत बड़ा दिमाग, जिसका आकार 1000 मि. ली. था, जबकि *होमो हैबिलिस* का केवल 680 मि.ली. था और आधुनिक मानवों का 1,350 मि.ली. है।

अधिक बड़ा और अधिक जटिल दिमाग होने के कारण *होमो इरेक्टस* की बुद्धिमत्ता निश्चित रूप से अपनी पूर्ववर्ती प्रजातियों की तुलना में अधिक थी और उसकी बौद्धिक जिज्ञासा जितनी विकसित रही होगी, उतनी उससे पहले की किसी भी प्रजाति की नहीं थी। इसमें बोलने की भी क्षमता अवश्य रही होगी। खुदाई के स्थल पर जो पत्थर के उन्नत औजार और हथियार मिले हैं, उनके आधार पर ही हम यह कह सकते हैं कि *होमो इरेक्टस* में बुद्धिमत्ता अधिक रही होगी। इनमें बहुत बड़ी मात्र में दुधारी, अश्रुबूंद के आकार की 'हथ कुल्हाड़ियां' और तेज धारवाले काटने के औजार शामिल थे।

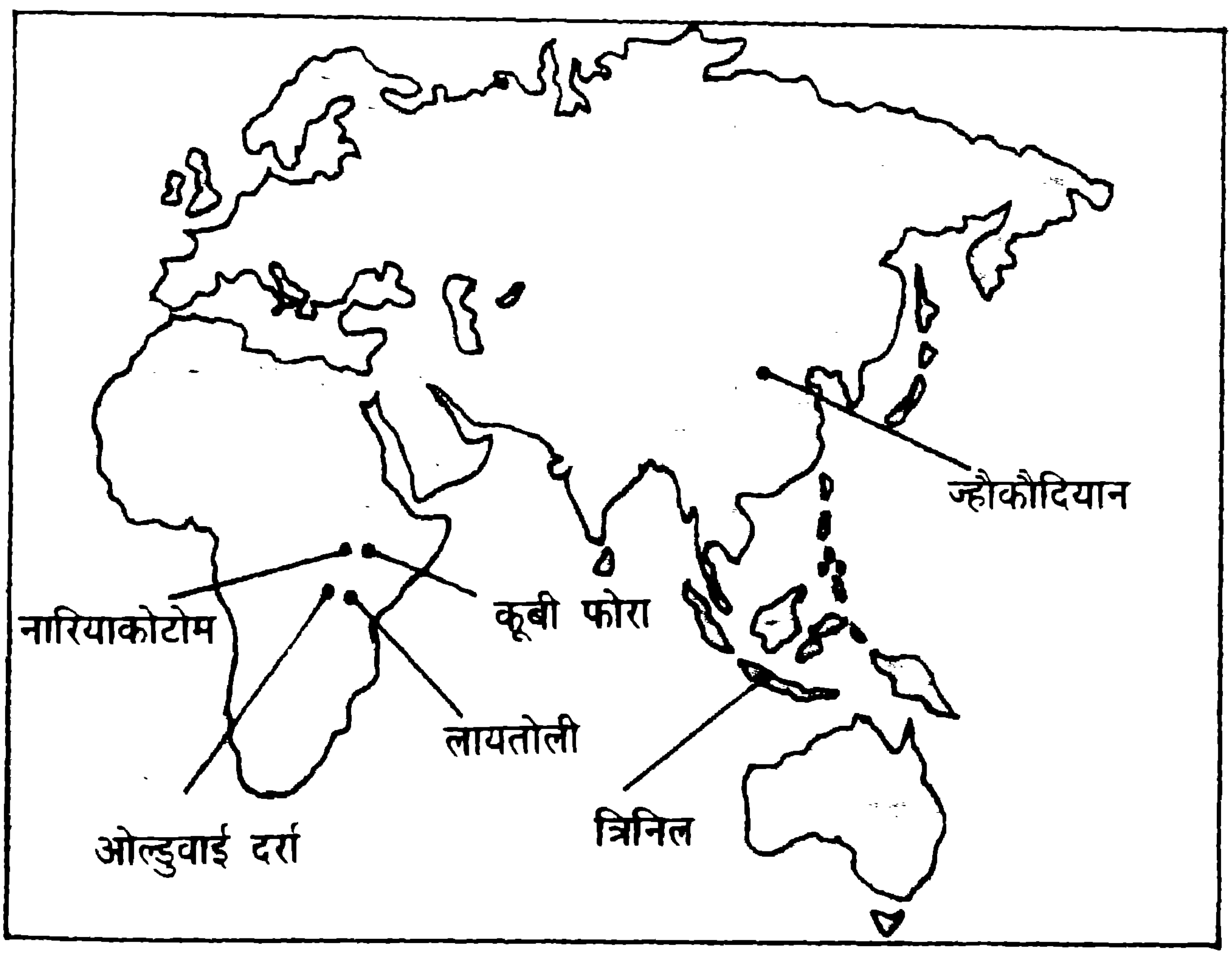
चीन और अन्य स्थानों पर मिले कच्चे कोयले से यह पता चलता है कि *होमो इरेक्टस* आग को नियंत्रित करना और पकाना जानते थे। बाद में मानव पुरखों के दांतों का आकार छोटा हो जाने का एक कारण यह भी हो सकता है कि पके हुए खाने को चबाने के लिए कच्चे मांस या कच्चे भोजन की तुलना में कम ताकत की जरूरत पड़ती है।

ज्यादा दिमागी क्षमता के कारण *होमो इरेक्टस* में अपने नजदीकी पड़ोस से परे नये-नये चरागाहों को तलाशने की भी प्रवृत्ति रही होगी। आज के मानव की तरह, उसमें भी यह देखने की इच्छा रही होगी कि 'पर्वत के उस पार' क्या है।

एक और कारण जिसने *होमो इरेक्टस* को अफ्रीका से बाहर जाने के लिए मजबूर किया होगा, वह संभवतः अनुकूल स्थानों पर बढ़ती जा रही आबादी का दबाव हो सकता है। चाहे प्रेरणा शक्ति कोई भी रही हो, किंतु शिकार करने और चरागाहों को तलाशने के बेहतर कौशल के रहते और पर्यावरण को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल की काफी उन्नत क्षमता के कारण, *होमो इरेक्टस* को नये अनखोजे इलाके में जाने में कोई कठिनाई पेश नहीं आयी होगी। इस प्रकार *होमो*

इरेक्टस ने लगभग 10 लाख वर्ष पहले अफ्रीका से बहुत बड़ी संख्या में बाहर जाना आरंभ कर दिया। जैसा कि चीन, दक्षिण-पूर्व एशिया और हाल ही में भारत की नर्मदा वादी में मिले जीवावशेषों के प्रमाणों से जाहिर होता है *होमो इरेक्टस* दूर-दूर तक फैल गये थे। आश्चर्य की बात है कि यूरोप में *होमो इरेक्टस* की मौजूदगी के जीवावशेष आधारित निश्चित प्रमाण नहीं मिले। उस समय विश्व के उस भाग में हिमयुगीन बर्फ के छा जाने के कारण घुमक्कड़ आदिम-मानव कम से कम कुछ समय के लिए गहमागहमी भरे उत्तरी क्षेत्र से बर्फ से ढंकी धरती पर नहीं जा पाये होंगे।

जब लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व *होमो इरेक्टस* ने सामूहिक रूप से अफ्रीका से बाहर जाना शुरू किया, तो वे अपने साथ औजार बनाने की उन्नत जानकारी भी ले गये। यह जानकारी एक अनजान और प्रतिकूल परिवेश में जिंदा रह पाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। जैसे-जैसे वे यूरोप और एशिया में फैलते गये वैसे-वैसे उनके औजार बनाने की तकनीक में सुधार आता चला गया। चौड़े पटल का स्थान कम चौड़े फलक ने ले लिया। इन फलकों को भी और आगे आकार देकर बढ़िया से बढ़िया औजार तैयार किये जाने लगे। लगभग 7 लाख वर्ष पहले



वे स्थान जहां *होमो इरेक्टस* के जीवावशेष पाये गये। इनसे यह साफ जाहिर होता है कि वे दूर-दूर तक फैल गये थे।

तक 20 या 30 अलग-अलग किस्मों के ऐसे औजारों के मौजूद होने की जानकारी मिली है, जो नोकदार, धारदार और घुमावदार थे और जो उससे पहले कभी नहीं देखे गये थे। ये गूंगे पत्थर जो कि अलग-अलग किस्म के दिमाग की सक्रियता के परिणाम थे, मानव इतिहास के मार्ग में आये एक महत्वपूर्ण परिवर्तन की कहानी कहते हैं।

उन्नत औजार-निर्माण के अलावा *होमो इरेक्टस* प्रवासी एक और अलग किस्म का परिवर्तन भी लाये। अपने नये निवास स्थान पर अपरिचित पर्यावरण का सामना होने पर उन्होंने अलग-अलग क्षेत्र के अनुसार जल्दी से खुद को ढाल लिया। इससे उन्हें नये पर्यावरण का अधिक सफलतापूर्वक मुकाबला करने में मदद मिली। त्वचा के रंग में परिवर्तन, उनमें से एक रहा होगा।

अभी तक निश्चित रूप से यह मालूम नहीं हो सका है कि लोगों की त्वचा का रंग अलग-अलग क्यों होता है। सबसे ज्यादा स्वीकार्य मत यह है कि त्वचा के रंग में अंतर का संबंध विटामिन 'डी' के पैदा होने से है, जो कि सही अस्थि-निर्माण के लिए जरूरी होता है। मानव शरीर की बाकी कोशिकाओं की तरह मानव त्वचा की कोशिकाओं में कोलेस्ट्रोल जैसा एक रसायनिक पदार्थ होता है, जिसे विटामिन 'डी' में बदला जा सकता है। किंतु इसके लिए इस पदार्थ में मौजूद छह कार्बन घेरों में एक का टूटना जरूरी होता है। ऐसा तभी होता है जब त्वचा पर सूरज की रोशनी में मौजूद पराबैंगनी किरणें पड़ें। एक बार इस घेरे के टूट जाने के बाद ही वह यौगिक पदार्थ खून की धारा में और जिगर में मौजूद प्रकिण्वों (एंजाइमों) में दाखिल हो जाता है और गुर्दे उसे विटामिन 'डी' में बदलने का काम पूरा करते हैं। ऐसा जानने में आया है कि जब त्वचा पर सूरज की रोशनी पर्याप्त रूप में नहीं पड़ पाती तो उसे परिणामस्वरूप विटामिन 'डी' की कमी हो जाती है, जिसके कारण बच्चों में हड्डियों संबंधी असामान्यता पैदा हो जाती है।

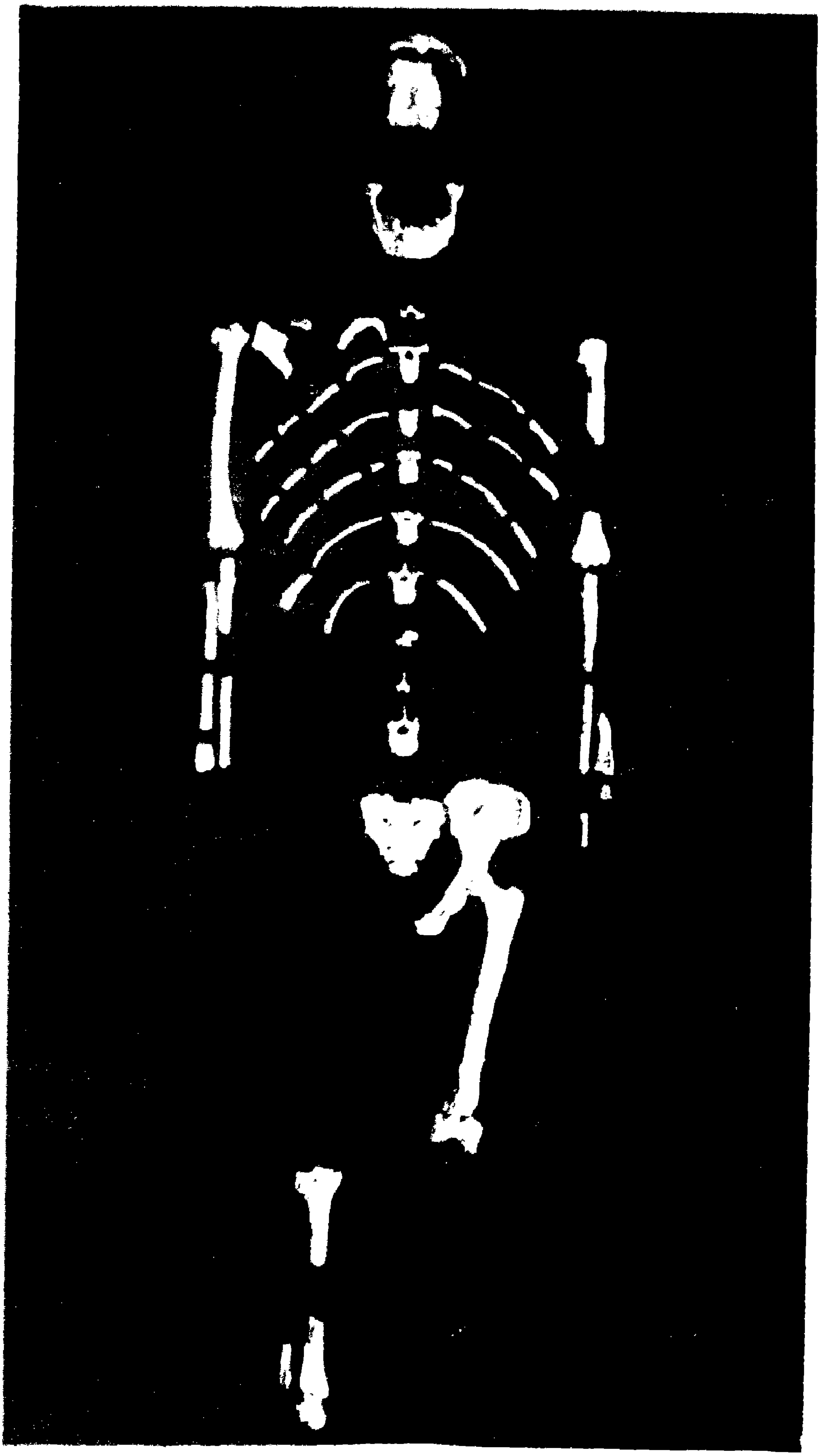
जैसे ही *होमो इरेक्टस* यूरोप की ठंडी धरती पर गये होंगे, जहां सूरज की रोशनी इतनी अधिक नहीं थी, जितनी कि ऊष्णकटिबंधीय अफ्रीका में, उनकी भूरी त्वचा उनके लिए समस्या बन गयी होगी। हल्की धूप में रक्षात्मक रंग-द्रव्य परत की जरूरत नहीं रह गयी होगी। इतना ही नहीं, उस रंग-द्रव्य ने त्वचा में विटामिन 'डी' के संश्लेषण को भी रोक दिया होगा। परिणामस्वरूप ठंडी जलवायु में रहते-रहते, कुछ प्रवासियों में कुछेक पीढ़ियों के बाद त्वचा का रंग-द्रव्य काफी सीमा तक समाप्त हो गया होगा और उनकी त्वचा सफेद बन गयी होगी। इस प्रकार धीरे-धीरे क्षेत्रानुसार उनके शरीर के रंग में फर्क आ गया होगा।



36 लाख वर्ष पुराने पैरों के निशान में उठी हुई चाप, गोल एड़ी और अंगूठे का आगे की तरफ होना। साफ जाहिर है कि यह सीधा चल पाने के लिए जरूरी है।



लायतोली में मिले *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* के पैरों के निशान



लूसी के जीवावशेष जो कि *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* का सबसे प्रसिद्ध नमूना है।



अमरीकी कलाकार जान गुर्चे द्वारा निर्मित एक नर *आस्ट्रालोपिथेकस एफारेंसिस* का कल्पित चित्र।



नीएंडरतल मानव जो अरकाथ जर्मनी में नीएंडरतल संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है।



फ्रांस में पाया गया हाथी दांत पर उकेरा गया 25,000 वर्ष पुराना शिरोभाग जो ब्रासेमपुआय की वीनस का माना जाता है।



नायेबग्यिा मे मिली हाथी दांत की 15000 वर्ष पुरानी वीनस की मूर्तियां



हाथी दांत की बनी 23000 वर्ष पुरानी सीने की सुइयां



वृहदाकार हाथी दांत पर उकेरा गया 26000 वर्ष पुराना शिरोभाग



16000 वर्ष पहले मानव के पुरखों द्वारा निर्मित जंगली सांड की भू-आकृति



फ्रांस की पिरेनीज पर्वत गुफा में 15000 वर्ष पहले मिट्टी को तराश कर बनाये गये जंगली सांड



फ्रांस में लगभग 17000 वर्ष पूर्व लास्काक्स गुफा में पुराने पत्थरों पर चित्रकारों द्वारा चित्रित कुछ अजीब पशुओं की आकृतियां



लास्काक्स में चित्रित जंगली सांड का शिरोभाग



भारत में भीमबेटका में 10,000 वर्ष पहले बनाये गये गुफा चित्र



भीमबेटका में हाथी और उस पर बैठा सवार

तुरकाना लड़के की खोपड़ी के आकार से यह अनुमान लगाया गया है कि *होमो इरेक्टस* शिशुओं के जन्म के समय उनके दिमाग का आकार किसी वयस्क के दिमाग के आकार की तुलना में एक तिहाई रहा होगा, जैसा कि आधुनिक मानव में पाया जाता है। ऐसी स्थिति में इस बात की पूरी संभावना है कि इस संसार में तुरकाना लड़के का आगमन आधुनिक मानव शिशुओं की तरह निस्सहाय अवस्था में हुआ होगा। इसका यह अर्थ है कि मां-बाप द्वारा शिशुओं की जो गहरी देखभाल आधुनिक मानव समाज का अंग बन चुकी है, वह लगभग 17 लाख वर्ष पहले प्राचीन *होमो इरेक्टस* के समय से ही विकसित होकर आरंभ हो गयी होगी।

बड़ा दिमाग और अधिक बुद्धि रखने वाला *होमो इरेक्टस* मानव विकास यात्रा में केंद्र-बिंदु बन गया। यह कहा जा सकता है कि उससे पहले जो कुछ था, वह अधिकतर बंदरों से मिलता-जुलता था और जो बाद में सामने आया वह ज्यादा मानव से मिलता जुलता था।

लगभग दस लाख वर्ष तक धीरे-धीरे *होमो इरेक्टस* का विकास होता रहा। लगभग 5 लाख वर्ष पहले हमारे कुछ पुरखे काफी कुछ हमारे जैसे और पहले के *होमो इरेक्टस* से काफी कुछ अलग दिखाई देते थे। उन्हें 'होमो सेपियन' अर्थात 'हमारी जाति के' या 'हमजात' नाम दिया गया।

5

नीएंडरतल मानव

जर्मनी में अरकार्थ संग्रहालय में एक ऐसे प्राणी को अच्छी-खासी पोशाक पहनाकर प्रदर्शित किया गया है, जिसे पहली नजर में देखने पर यह भ्रम होता है, कि यह व्यक्ति आधुनिक मानवों में से एक है। किंतु गौर से देखने पर पता चलता है कि यह कोई मानव नहीं है। उसका चेहरा हमारे चेहरों से बिल्कुल अलग है। उसकी खोपड़ी का ऊपरी भाग चपटा है, भौंहों की हड्डियां ऊंची-ऊंची हैं, नाक लंबी और जबड़े आगे की तरफ निकले हुए हैं। वह हमारे सबसे नजदीकी पुरखों में से एक नीएंडरतल मानव है।

लगभग 140 वर्ष पहले, नीएंडरतलों का पहला जीवावशेष मिला था, तभी से यह एक रहस्य बना हुआ है कि दरअसल नीएंडरतल किस किस्म के प्राणी थे। उनका वर्णन इस प्रकार किया गया है : "लंबी-लंबी भौंहों वाले, ऐसे मंदबुद्धि पशु जिनकी विशेषताएं, आदिम प्रकार की अधिक और मानवों जैसी कम थीं—भारी भरकम शरीर वाले ऐसे उपमानव जिनमें समझ कम थी।"

जब 1856 में डसलडोर्फ के निकट नीएंडर वादी में (आधुनिक जर्मन भाषा में तल का अर्थ है वादी) एक चूना-पत्थरों की गुफा में जब नीएंडरतल का पहला कंकाल जीवावशेष प्राप्त हुआ तो किसी के भी मन में मानव विकास के बारे में कोई विचार तक नहीं था। आधुनिक मानवों का विकास कुछ बंदर जैसे दिखाई देने वाले प्राणी से हुआ था—यह विचारधारा अभी प्रस्फुटित नहीं हो पायी थी। इसलिए जब चूना खनिकों को ऐसे टुकड़े मिले, जो किसी मानव की खोपड़ी के दिखाई देते थे, तो किसी को भी उनके वास्तविक महत्व के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। खोपड़ी के टुकड़े बिल्कुल मानव जैसे थे भी नहीं। हालांकि खोपड़ी में एककोणीय भौंहों का उभार और एक नीची झुकती हुई खोपड़ी की टोपी मौजूद थी, टांगों की हड्डियां अत्यंत मोटी थीं जो किसी मानव जैसी नहीं लगती थीं। जिस स्थानीय विज्ञान-अध्यापक के हाथ खोपड़ी के ये अवशेष लगे, उसने भी यह समझा कि ये नोआह के समय की बाढ़ के किसी शरणार्थी के अवशेष हैं।

उसके समय के अन्य लोगों ने सोचा कि वह प्राणी 'कोई बेचारा मूर्ख एकांतवासी' रहा होगा, जो संभवतः अस्थि रोग से पीड़ित रहा होगा। मानव की पूर्वज परंपरा की जानकारी के अभाव में नीएंडरतल कंकाल को किसी विकृत मानव का कंकाल मात्र मान लिया गया।

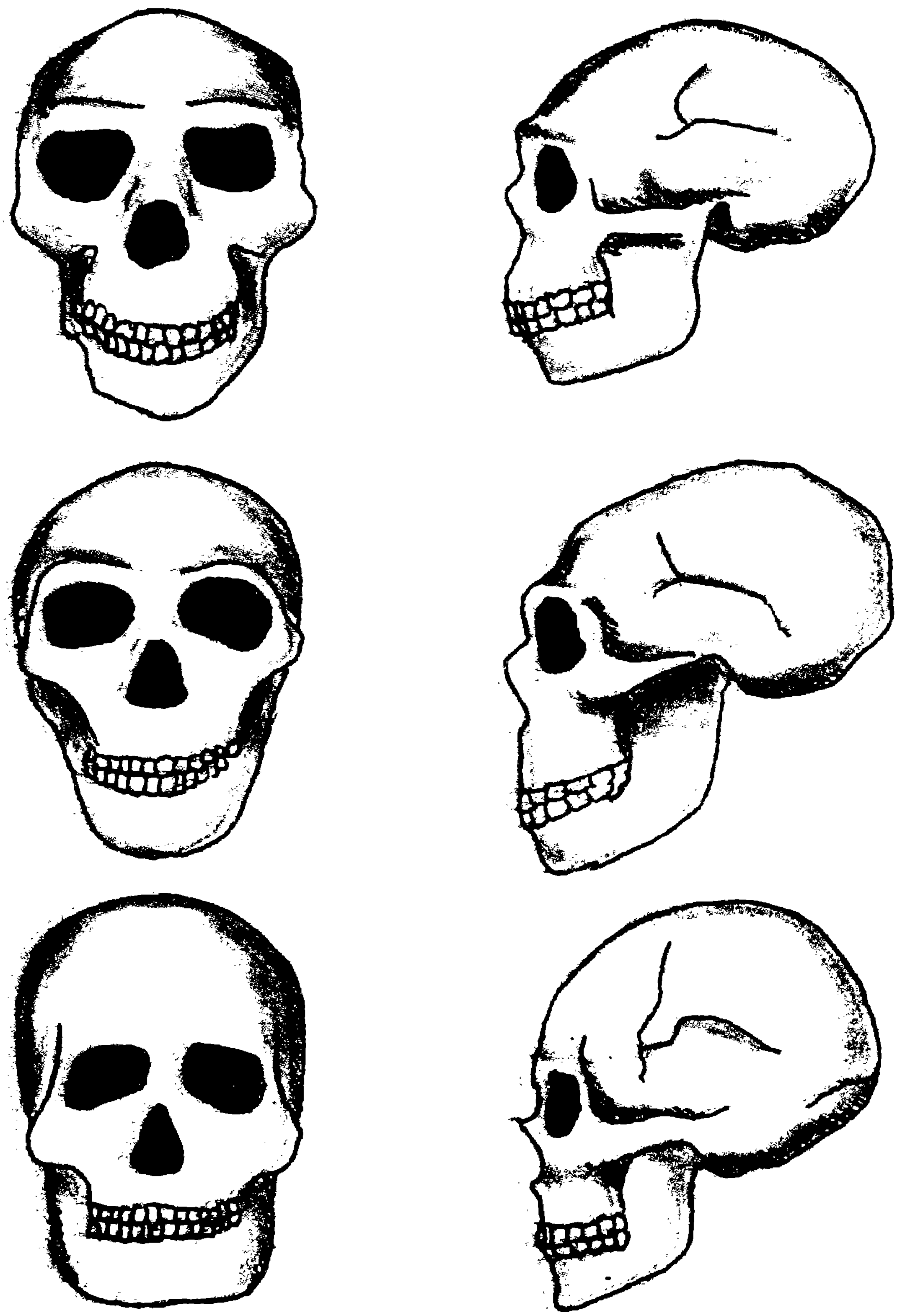
किसी नीएंडरतल खोपड़ी का विस्तृत विवरण देने वाले सबसे पहले व्यक्तियों में से एक थे—टी.एच. हक्सले। 1863 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'मैन्स प्लेस इन नेचर' में उन्होंने यह स्वीकार किया कि तब तक खोजी गयी वह मानव की ऐसी खोपड़ी थी जो बंदर की खोपड़ी से सबसे ज्यादा मिलती-जुलती थी। किंतु उन्होंने उसके बड़े मस्तिष्क की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए यह दलील दी कि खोपड़ी का वह नमूना होमो सेपियन की संभावित किस्म के अंतर्गत आता था। किंतु अन्य लोगों का यह विचार था कि उस खोपड़ी में पाये जाने वाले अंतर इतने अधिक थे कि वह प्राणी आदि-मानव की किसी अलग जाति का रहा होगा। उसके लिए विलियम किंग द्वारा 1864 में एक नया नाम गढ़ा गया (*होमो नीएंडरथालेंसिस*)। किंतु आज नीएंडरतल *होमो सेपियन* जाति के ही माने जाते हैं। यह वह जाति है जिससे आधुनिक मानवों का संबंध है।

धीरे-धीरे जैसे-जैसे यूरोप से पश्चिम एशिया तक एक सौ से भी अधिक स्थलों पर नीएंडरतलों के अवशेष मिलते गये, इन मानव पुरखों का असली स्वरूप सामने आता चला गया। अब यह माना जाता है कि नीएंडरतल लगभग 250,000 वर्ष पहले से यूरोप में निवास करने लगे थे, किंतु लगभग 30,000 वर्ष पहले का समय आते-आते यह जाति वहां लुप्त हो गयी। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि लुप्त होने से पहले लगभग 10,000 वर्ष की लंबी अवधि तक वे आधुनिक मानवों के साथ-साथ रहते चले आये होंगे—ऐसा हाल की खोजों से मालूम होता है।

कई दशकों तक एकत्रित किये गये काफी अधिक जीवावशेषों के आधार पर हम काफी कुछ नीएंडरतल से मिलती-जुलती आकृति का पुनर्निर्माण कर सकते हैं। ऐसी ही एक आकृति अरकार्थ, जर्मनी में नीएंडरतल संग्रहालय में प्रदर्शित की गयी है। अब कुछ निश्चय के साथ यह कहा जा सकता है कि शक्ल-सूरत में नीएंडरतल हमसे कुछ ज्यादा अलग नहीं थे, यद्यपि वे हमारी तुलना में अधिक तगड़े थे। मोटी-मोटी भारी हड्डियों पर बने शक्तिशाली मांसपेशियों के निशानों से यह पता चलता है कि वे काफी ज्यादा और लंबे समय तक श्रम कर पाते होंगे।

रिचर्ड लीके ने नीएंडरतलों के दिखाव-बनाव का सटीक वर्णन इस प्रकार

किया है, "किसी आधुनिक मानव के ऐसे चेहरे की कल्पना कीजिए जो रबड़ का बना हुआ हो। अब उसकी नाक को पकड़कर उसे कुछ इंचों तक खींचिये। ऐसा करने से केवल नाक ही नहीं बल्कि उसके इर्द-गिर्द जुड़ा, चेहरे का पूरा मध्य



होमो इरेक्टस (सबसे ऊपर), नीएंडरतल मानव (बीच में) और आधुनिक मानव (सबसे नीचे) की खोपड़ियां। आधुनिक मानव में बाकी जातियों से अलग विशेषताएं दिखाई देती हैं।

भाग बेढंगी शक्ल में बाहर निकला हुआ दिखाई देगा। ऐसी ही शक्ल नीएंडरतलों के चेहरे की होती है।"

नीएंडरतल न केवल अपने पुरखों, *होमो इरेक्टस* की तुलना में छोटे और अधिक भारी डील-डौल वाले थे, बल्कि उनका दिमाग भी *होमो इरेक्टस* की तुलना में काफी बड़ा था। वास्तव में वह औसत आधुनिक मानव के दिमाग से भी थोड़ा सा बड़ा था। किंतु नीएंडरतल के पूरे शारीरिक आकार के अनुपात में उसका दिमाग औसत मानव के दिमाग से छोटा था। वह जटिल भी कम था और उसमें सलवटें भी कम थीं। बड़े दिमाग के कारण नीएंडरतलों में प्राकृतिक शक्तियों से लड़ने की अधिक क्षमता थी। वे पहले मानव पुरखे थे, जिन्होंने ऊष्णकटिबंधीय अफ्रीका की झुलसती गर्मी से कहीं ज्यादा ठंडी जलवायु में रहना सीखा था।

जो जीवावशेष मिले हैं, उनसे यह पता चलता है कि नीएंडरतल उत्तर में ब्रिटेन और दक्षिण में स्पेन तक जा पहुंचे थे और बाद में वे पूर्व में केंद्रीय एशिया और पश्चिम एशिया तक फैल गये। किंतु उनकी संख्या कभी भी ज्यादा नहीं रही—किसी भी एक समय पर यह संभवतः हजारों से आगे कभी नहीं बढ़ी।

उत्तर में नीएंडरतलों को पहली बार एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जिससे उनके पूर्वजों का कभी पाला नहीं पड़ा था और ये थे बहुत ठंडे वन प्रदेश। इन वनों में जी पाने के लिए धीरे-धीरे आदी होने में उन्हें हजारों बरस लग गये। उनकी शरीर रचना इस आदी होने की प्रक्रिया की साक्षी है। उनके छोटे-छोटे अंग और नाटे और गठीले शरीर आज के एस्कीमों के शरीर जैसे थे, जो ठंडी जलवायु में शरीर को नष्ट होने से बचाने में अत्यंत उपयुक्त होते हैं। चौड़ी नाकों से उन्हें भीतरी सतह ज्यादा मिल जाती थी, जिसके जरिये उस ठंडी और शुष्क हवा में, जिसमें उन्हें सांस लेनी पड़ती थी, कुछ अतिरिक्त नमी मिल जाती थी। इसके अलावा ऐसी भूमि पर, जहां सब्जी और छोटे-मोटे शिकार ज्यादा नहीं मिलते थे, उनकी शक्तिशाली मांसपेशियां बड़े शिकारों को मारने में मददगार होती थीं। वे बड़े शिकार थे—जंगली सांड या बारासिंगे, जिनसे उन्हें जीवित रहने के लिए भोजन प्राप्त हो जाता था। कोई परिष्कृत औजार न होने के कारण नीएंडरतलों को आपसी सहयोग से ही शिकार मारना पड़ता था। वे शिकार को घेरकर उसे दलदल या किसी नदी के किनारे ले जाते थे और उस पर पत्थर की नोक वाले भालों जैसे तेजधार हथियारों से हमला कर देते थे। 1948 में जर्मनी के एक दलदल वाले स्थाल पर मिले हाथी के जीवाश्म की हड्डियों में एक लगभग 2.5 मीटर लंबा लकड़ी का भाला मिला। स्वाभाविक है बड़े शिकारों को मारने में एक जोखिम भी रहता था और गंभीर चोटें एक आम बात थी। जीवावशेषों

के साक्ष्य से यह पता चलता है कि नीएंडरतलों में गर्दन और सिर की चोटें आम थीं।

शिकार करते समय नीएंडरतलों को उस समय चोटें लगती थीं, जब वे अपने शिकार पर नजदीक से भाला फेंकने की कोशिश करते थे, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वे दूर से भाला फेंकने की कला नहीं जानते थे। यह बड़ी हैरानी की बात है क्योंकि औजार बनाने में वे काफी दक्ष थे। उदाहरण के तौर पर औजार बनाने के लिए चकमक पत्थर के सही टुकड़े इकट्ठे करने के उद्देश्य से नीएंडरतलों को लंबा रास्ता चलकर जाना पड़ता था जो कि प्रायः कई किलोमीटरों का होता था। इसके अलावा नीएंडरतल स्थलों पर जिस किस्म के औजार पाये गये थे, उन्हें बनाने के लिए प्रशिक्षण की जरूरत पड़ती थी। ऐसा हाल के कुछ अध्ययनों से पता चला है। वास्तव में अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि नीएंडरतलों द्वारा जो तरीके इस्तेमाल किये जाते थे वे आगे चलकर आधुनिक मानव द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले तरीकों से कम मुश्किल नहीं थे।

ऐसा समझा जाता है कि नीएंडरतल स्थलों में पाये गये काफी औजार खुरचनियों के रूप में थे। ये खुरचनियां वस्त्रों के रूप में इस्तेमाल किये जाने वाले चमड़े को संवारने के काम आती थीं। किंतु इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि नीएंडरतल अपने वस्त्रों पर किसी किस्म की सिलाई करते थे या नहीं। लेकिन यह एक कौतूहल का विषय है कि आज के एस्कीमों की तरह नीएंडरतलों के अगले दांत काफी घिसे हुए थे जिससे यह जाहिर होता है कि चमड़े पर काम करते समय, उसे पकड़ने के लिए वे इन दांतों का 'तीसरे हाथ' के रूप में इस्तेमाल करते थे।

नीएंडरतल जिस किस्म के हथियार बनाते थे उन्हें बनाने के लिए और बड़े जानवरों को मारने के लिए, सामूहिक शिकार की व्यवस्था करने के लिए, उन्हें अपनी जानकारी और निर्देश दूसरों तक पहुंचाने पड़ते होंगे, जिसके लिए वे जरूर किसी भाषा का इस्तेमाल करते होंगे। नीएंडरतल खोपड़ियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि उन खोपड़ियों के मालिकों के पास किसी प्रकार का ध्वनि यंत्र जरूर रहा होगा, जो आधुनिक मानव के ध्वनि यंत्र से मिलता-जुलता, किंतु इतना बड़ा नहीं होगा। इसलिए यह संभव है कि संप्रेषण के लिए नीएंडरतलों के पास अनेक प्रकार की आवाजें निकालने की क्षमता रही होगी, किंतु उनकी भाषा उतनी जटिल नहीं रही होगी जितनी कि हमारी। उसके लिए अधिक उन्नत दिमाग की जरूरत थी, जो कि आधुनिक मानवों के पास है।

हम यह जानते हैं कि उत्कट जलवायु से मुक्ति पाने के लिए नीएंडरतलों

को गुफाओं और चट्टानों की ओट में शरण लेनी पड़ती होगी और वे आग का प्रयोग करना भी जानते थे। किंतु उनका सामाजिक जीवन कैसा था ? एक अमरीकी पुरातत्ववेत्ता लेविस बिनफोर्ड गुफाओं में पायी गयी जीवावशेष हड्डियों और पत्थर के औजारों के आधार पर नीएंडरतलों की जीवन शैली के बारे में कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने लाये हैं। उनका यह मानना है कि नीएंडरतल महिलाएं और पुरुष अलग-अलग जीवन व्यतीत करते थे, जो कि आश्चर्यजनक है। वे अलग-अलग किस्म का भोजन करते थे और अलग-अलग औजारों का इस्तेमाल करते थे, जो पत्थरों के बने होते थे। दक्षिण पश्चिमी फ्रांस में कोम्बे ग्रिनाल नामक स्थल पर पायी गयी पशुओं की हड्डियों के हजारों टुकड़ों और पत्थर के औजारों का विश्लेषण करने के बाद एक अजीब सा तथ्य बिनफोर्ड के सामने आया। पशुओं की हड्डियों के जो टुकड़े और पत्थरों के जो औजार गुफाओं और चट्टानों की ओट में मिले वे गुफाओं और चट्टानों की ओट से बाहर कुछ दूर के स्थानों पर मिले पशुओं की हड्डियों के टुकड़ों और पत्थर के औजारों से अलग किस्म के थे। गुफाओं और चट्टानों की ओट में मिले टुकड़े बड़े-बड़े पशुओं की मज्जावाली हड्डियों और खोपड़ियों के थे, जिन्हें गरम करके उनके भीतर का स्वादिष्ट खाद्य प्राप्त किया जा सकता था। यहां पाये गये औजार सीधे-सादे थे जो कि गुफा से या वहां से थोड़ी दूर से प्राप्त किये गये पत्थरों से तैयार किये गये थे। इन अवशेषों के साथ-साथ हमेशा कुछ राख जैसी चीज भी मिलती थी, जिससे यह पता चलता था कि वहां पर आग जलायी जाती थी।

जिन जगहों पर पशुओं के बाकी शरीर की हड्डियां पायी गयीं वहां काफी परिष्कृत किस्म के औजार भी मिले। ये थीं खुरचनियां जो कि ऐसे पत्थर से बनी थीं, जो प्रायः दूर-दूर से लाया जाता था। दिलचस्प बात यह है कि इन खुरचनियों के पत्थरों की मूल चट्टानों और उन खास किस्म के जानवरों के बीच एक संबंध रहता था, जिनकी हड्डियां शरण स्थलों पर पायी जाती थीं। अर्थात् जब खुरचनियों की चट्टानें उच्च भूमि से लायी जाती थीं, तो सारी हड्डियां भी घोड़ों जैसे उच्च भूमि के पशुओं की होती थीं। यदि चट्टानें नदी घाटी से लायी जाती थीं, तो हड्डियां भी सुअरों जैसे नदी घाटी के पशुओं की होती थीं। शरण स्थलों पर पायी गयी हड्डियों के आधार पर, बिनफोर्ड का कहना है कि नीएंडरतल पूरे का पूरा शिकार अपनी मादाओं के पास नहीं ले जाते थे, जो कि शरण स्थलों पर ही रहती थीं। वे केवल खोपड़ियां या मज्जावाली हड्डियां ही वहां ले जाया करते थे। वे कहते हैं, ''यदि आप हड्डियों को गरम करें, तो उन्हें किसी खुले स्थान पर फोड़कर खाने की तुलना में उनमें से आपको अधिक चर्बी मिलेगी।''



विशिष्ट नीएंडरतल निवास स्थल।

बिनफोर्ड के अनुसार किसी शरण स्थल पर रहने वाले खास नीएंडरतल समूह में लगभग 12 वयस्क और कुछ बच्चे रहते होंगे। नर इन शरण स्थलों में स्थायी रूप से नहीं रहते थे, बल्कि समय-समय पर शिकार करने के बाद लौट आया करते थे। मादाएं और बच्चे अधिकतर रसदार और दूसरे फल या आग पर भुने हुए कंदमूल खाकर गुजारा करते थे। हां, कभी-कभार उन्हें पुरुषों द्वारा लायी गयी हड्डियों की मज्जा जैसा स्वादिष्ट भोजन भी खाने को मिल जाता था। पुरुष जो शिकार करते थे, उसका अधिकतर भाग, खास तौर पर मांस वाले हिस्से, वे खुद शरण स्थलों के बाहर ही खा जाते थे। यद्यपि आदिम प्राणी होने की दृष्टि से नीएंडरतल काफी बुद्धिमान थे किंतु अपने भविष्य के बारे में कोई योजनाएं नहीं बना पाते थे और न ही अपने आसपास के साधनों का पूरा इस्तेमाल कर पाते थे।

अपनी बैद्धिक कमियों के बावजूद, नीएंडरतल एक दूसरे का ध्यान रखते थे। उनके कब्रिस्तानों से और कंकाल अवशेषों पर लगे चोटों के निशान से यह जानकारी प्राप्त होती है। वे सबसे पहले, मानवों जैसे ज्ञात प्राणी हैं, जो अपने

मृतकों को दफनाया करते थे। ईराक की एक गुफा में एक 1,00,000 वर्ष पुरानी कब्र में दो मादाओं और एक शिशु के साथ-साथ फूलों का पराग भी पाया गया। संभवतः दफनाने के तौर पर किन्हीं पास के खेतों से इकट्ठे किये गये कुछ फूल भी लाश के साथ रख दिये गये थे। इससे भी हैरानी की बात यह है कि दफनाने में जिस किस्म के फूल इस्तेमाल किये जाते थे, उनमें से अधिकतर पारंपरिक औषधीय जड़ी-बूटियां होती थीं। दूसरे स्थानों पर मिले कंकालों पर ठीक हुए जख्मों के निशान पाये गये हैं। इन जख्मों को ठीक होने के लिए कुछ समय तक किसी प्रकार की सेवा और देखभाल की जरूरत अवश्य पड़ती होगी। ऐसी देखभाल और सहानुभूति के बावजूद नीएंडरतलों का जीवन लंबा नहीं था—संभवतः इसलिए क्योंकि उनके जीने का ढंग कठोर था। ऐसा लगता है कि जो नीएंडरतल वयस्क हो पाते थे, मृत्यु के समय उनकी औसत आयु 30 वर्ष की थी। यद्यपि कुछ कंकाल 40 वर्षीय नीएंडरतलों के भी मिले हैं।

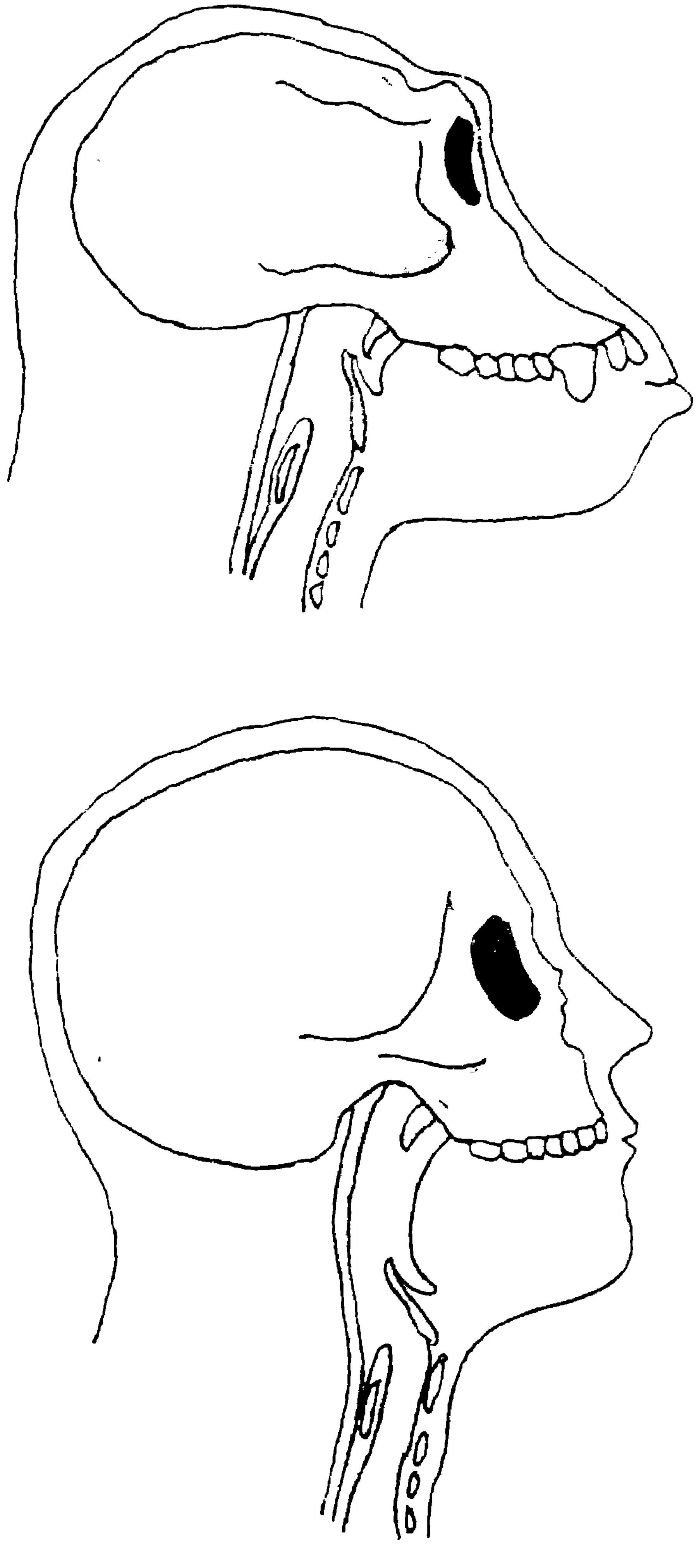
कई स्थलों से प्राप्त जीवावशेषों से यह पता चलता है कि लगभग 40,000 वर्ष पहले आधुनिक मानव जो कि असली *होमो सेपियन* थे यूरोप में जा बसे थे। वे बौद्धिक रूप से नीएंडरतलों से अधिक श्रेष्ठ थे। उनमें नये-नये काम करने की सोच थी, जैसे कि बेहतर हथियार बनाना, जिसके फलक ज्यादा बारीक थे। वे कपड़ों को सिलकर पहनते थे, उनके आश्रय स्थल बेहतर थे और उनकी अंगीठियां खाना पकाने में अधिक कारगर थीं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी (जैसा कि हमें आगे चलकर मालूम होगा) कि वे बोलने की शक्ति रखते थे। ये आधुनिक मानव लगभग 10,000 वर्ष तक नीएंडरतलों के साथ-साथ रहे और उसके बाद नीएंडरतलों का लोप हो गया। अभी तक यह मालूम नहीं हो पाया है कि नीएंडरतलों जैसी शक्तिशाली जाति के लुप्त होने का असली कारण क्या था। यह बात भी निश्चित रूप से मालूम नहीं हो पायी कि क्या नीएंडरतलों और आधुनिक मानव के बीच संकरण हो पाया था या नहीं ? क्या नीएंडरतलों के जीन आधुनिक यूरोपवासियों में मौजूद हैं ? कारण चाहे कुछ भी रहा हो, किंतु वास्तविकता यह है कि लगभग 30,000 वर्ष पहले तक आते-आते मानव की केवल एक ही जाति का इस धरती पर बोलबाला हो गया और वह जाति थी *होमो सेपियन सेपियन*।

6

पहले शब्द

चार्ल्स डार्विन के अभिन्न मित्र और उनके प्रबल समर्थकों में से एक, थामस हेनरी हक्सले, सुस्पष्ट वाणी और भाषा के महत्व को अच्छी तरह से जानते थे। इस कारण ही मानव पशु-जगत के अन्य सदस्यों से अलग पहचान बना पाया है। 1863 में प्रकाशित 'मैन्स प्लेस इन नेचर' नामक अपने निबंधों के छोटे संग्रह में उन्होंने एक टिप्पणी करते हुए कहा है, "मेरा यह अटल विश्वास है कि मानव और पशुओं के बीच एक बहुत बड़ी खाई है। केवल मानव के पास बोधगम्य और विवेक संगत वाणी है। वह इस वाणी रूपी पर्वत के शिखर पर खड़ा होकर अपने साधारण सहप्राणियों की तुलना में बहुत ऊंचा उठ गया है और सत्य के अनंत स्रोत से, यत्र-तत्र एक किरण सी बिखेरता हुआ अपनी स्थूल प्रकृति से ऊपर उठकर गौरवांवित हो गया है।" हक्सले का कहना सही था क्योंकि मानव की वाचित भाषा, ढेरों सूचना को एक सही-सही अंदाज में संप्रेषित करने की अपनी क्षमता के कारण, किसी भी अन्य भाषा से बिल्कुल अलग है। जब हम कहते हैं, "गुलाब की गंध सुहानी होती है," तो हम फूल की सही-सही पहचान करने के अलावा उसके संवेदन की भी पहचान कर रहे होते हैं जो उसकी सुगंध हमारी नाक में पैदा करती है। यही संप्रेषण गुरगुराहट या किसी चेष्टा द्वारा संभव नहीं है जिसका इस्तेमाल अधिकांश पशुओं द्वारा अपनी जाति के अन्य पशुओं तक अपनी अनुभूतियों को पहुंचाने के लिए किया जाता है।

इसके पश्चात यह प्रश्न उठता है : वह क्या चीज है जिसकी बदौलत आधुनिक मानवों को वाणी शक्ति मिल पायी है, जो उसके पूर्वजों में नहीं पायी जाती थी। इस चीज का पता लगाना कोई आसान काम नहीं था। यह इसलिए क्योंकि जबड़े, दांत, हड्डियां और खोपड़ी तो ऐसी चीजें हैं जो टिकाऊ हैं और इनके अवशेष भी बचे रह जाते हैं। किंतु ध्वनि-यंत्र जो सुस्पष्ट वाणी का मूल साधन है, और दिमाग जिसकी जटिलता उसके मालिक की बुद्धिमत्ता का संकेत देती है, नरम ऊतकों के बने होते हैं, जिनके अवशेष बचे नहीं रह पाते। किंतु



बंदरों (ऊपर) और मानव का (नीचे) ध्वनियंत्र जिसमें मानवों के गले का विवर अपेक्षाकृत बड़ा दिखाई देता है। इसी बड़े विवर की बदौलत मानव को बोलने की शक्ति मिल पायी है।

इस समस्या का हल ढूंढ़ने के कई परोक्ष मार्ग थे।

बोली जाने वाली भाषा की पहेली का हल ढूढ़ने के लिए, आइये पहले यह देखें कि हमारा ध्वनियंत्र, बंदर के ध्वनियंत्र से किस तरह से अलग है। बंदरों और आधुनिक मानवों, दोनों के ध्वनियंत्र, कंठ, गले, जुबान और होंठों को मिलाकर बने हैं।

मानव अनेक प्रकार की आवाजें निकाल सकते हैं। विभिन्न प्रकार की ये आवाजें बहुत से स्रोतों से निकलती हैं। वास्तव में मानव की वाणी आधार ध्वनियों से बनती है, जो व्यंजनों और स्वरों के मेल से आकार ग्रहण करती है। आधार ध्वनियां दो लचीली स्वरतंत्रियों के कंपन से ध्वनियंत्र या कंठ से पैदा होती हैं और यह कंपन, श्वासनली के रास्ते, फेफड़ों से निकली हवा से पैदा होता है। ध्वनियंत्र के ऊपरी और निचले हिस्से एक दूसरे पर आश्रित रहते हुए हरकत करते हैं। इससे स्वरतंत्रियां फैलती या सिकुड़ती हैं, जिससे पैदा होने वाली आवाज का स्वर ऊंचा या नीचा होता है। जितने जोर से हवा निकलती है, उसी के अनुसार प्रबल या धीमी आवाज निकलती है। दांत, जबान, तालु और चेहरे की पेशियां, उन ध्वनियों को मुंह में वाणी का रूप देती है। सुस्पष्ट वाणी के लिए आवश्यक अनेक प्रकार की ध्वनियां निकाल पाने की क्षमता मानव को गले के बड़े विवर, अर्थात ''स्वरतंत्रियों और मुंह के ऊपरी हिस्से के बीच के फासले के कारण मिल पाती है। इस फासले का कारण है मुंह में स्वरयंत्र का काफी नीचे स्थित होना।'' इससे स्वरयंत्र को काफी फैलने और सिकुड़ने की गुंजाइश मिल जाती है, जिसके कारण अनेक प्रकार की आवाजें निकल पाती हैं।

दूसरी ओर बंदरों का स्वरयंत्र गले में काफी ऊपर की ओर होता है, जिसके कारण उनके गले का विवर काफी छोटा रह जाता है। इसके कारण मानवों की तुलना में बंदर बहुत कम प्रकार की आवाजें निकाल सकते हैं। इसलिए उनमें हमारी तरह वाचित शब्द बोल पाने की क्षमता नहीं होती। वास्तव में अब यह पता चला है, कि गले का विस्तारित विवर ही, हमारे पूरी तरह से साफ बोलने का मूल कारण रहा होगा। यह हमारे मानवत्व की सबसे बड़ी निशानी है।

यहां ध्यान देने योग्य एक रोचक बात यह है कि नये पैदा हुए शिशु का वाक् मार्ग लगभग वैसा ही होता है जैसा कि बंदरों का। उसका भी स्वरयंत्र गले में ऊपर की ओर होता है। इसी कारण नया पैदा हुआ बच्चा लगभग डेढ़ वर्ष तक साफ नहीं बोल पाता। किंतु नये पैदा हुए बच्चे को एक ऐसी सुविधा प्राप्त होती है, जो बड़ी उम्र के मानवों के पास नहीं होती और जिससे बच्चे के न बोल पाने की कमी पूरी हो जाती है। स्वरयंत्र के ऊपर की ओर स्थित होने के

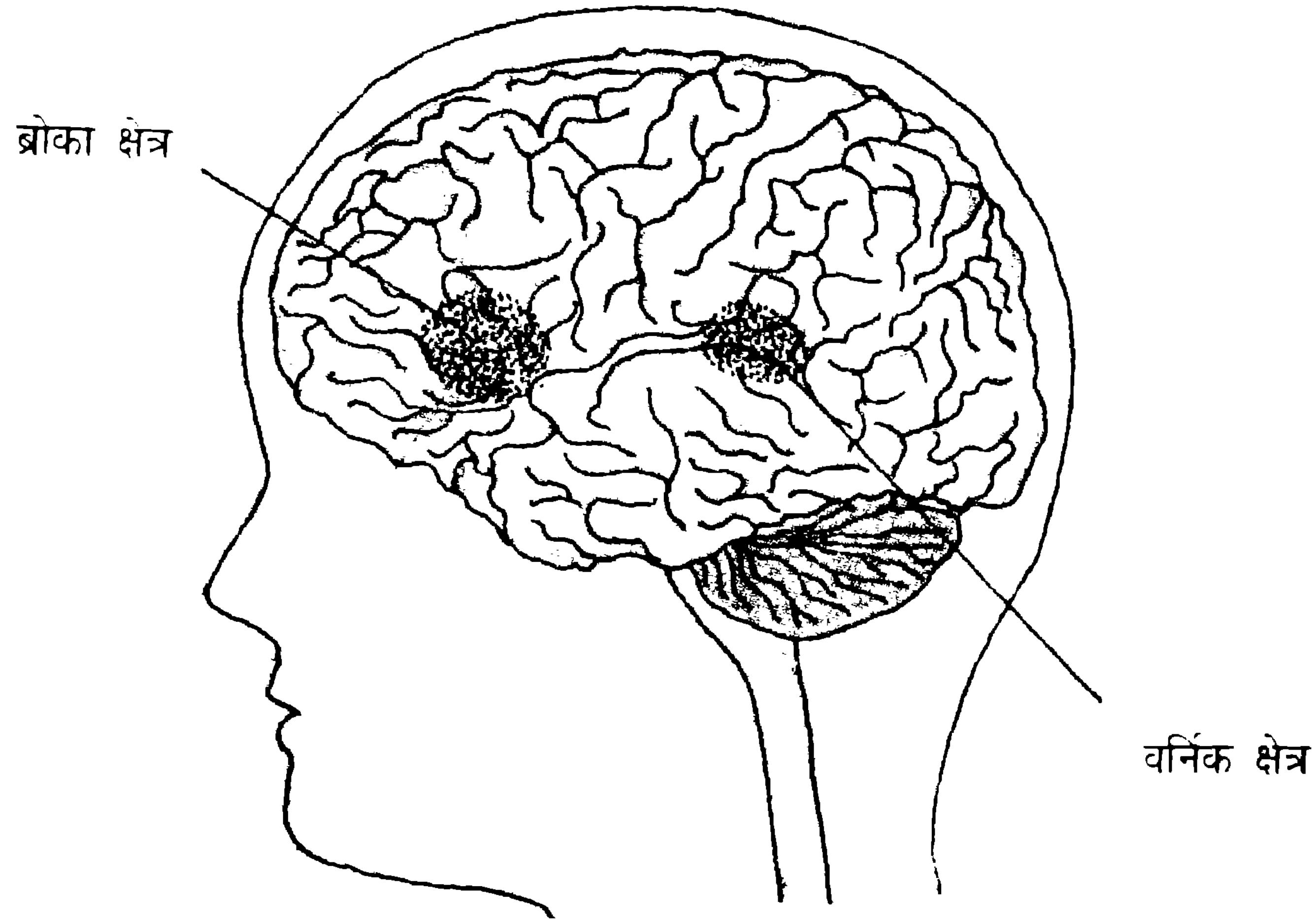
कारण मानव शिशु और बंदर बिना दम घुटे खाना निगलने और सांस लेने का काम एक साथ कर सकते हैं, जोकि अन्यथा लगभग असंभव होता है। एक्स-रे से लिये गये चित्रों से पता चला है कि मानव के नये पैदा हुए और नन्हे बच्चे उसी प्रकार सांस लेते, निगलते और उच्चारण करते हैं जैसे कि बंदर। डेढ़ वर्ष की आयु तक एक मानव शिशु का स्वरयंत्र गले में उसी प्रकार ऊंचा स्थित होता है जैसे कि मानवेतर नर वानर का। किंतु बाद में स्वरयंत्र गले के नीचे की ओर उतरने लगता है। स्वरयंत्र का इस प्रकार नीचे उतरना, बच्चे के सांस लेने, निगलने और उच्चारण करने के ढंग में एक जबरदस्त परिवर्तन ला देता है। स्वरयंत्र की स्थिति में इसी परिवर्तन के कारण बच्चा अपने पहले-पहले शब्द बोल पाता है। किंतु अब उसकी बिना दम घुटे एक साथ सांस ले पाने और निगलने की क्षमता चली जाती है।

किंतु साफ-साफ बोल पाने के लिए इतना ही काफी नहीं कि गले का विवर बड़ा हो। बोले गये शब्दों को अर्थपूर्ण बनाने के लिए जरूरी चिंतन प्रक्रिया के समन्वय के लिए दिमाग का पर्याप्त रूप से विकसित होना भी जरूरी है।

मानव का दिमाग न केवल उसकी विकास यात्रा में पूर्ववर्तियों की तुलना में बड़ा होता है, बल्कि अधिक जटिल भी होता है। दिमाग के दो हिस्से होते हैं। एक है बड़ा, गुंबद के आकार का हिस्सा, जिसे प्रमस्तिष्क कहते हैं। मस्तिष्क की 6 मि.मी. मोटी सतही परत जिसे मस्तिष्क वल्कुट कहते हैं, बुद्धिमत्ता का आधार होती है। दिमाग को शरीर की विभिन्न इंद्रियों से जो भी सूचनाएं मिलती हैं उन्हें वह यहीं पर एकत्रित करता चला जाता है। दिमाग का छोटा हिस्सा, जिसे अनुमस्तिष्क कहते हैं, मस्तिष्क के पीछे नीचे की ओर स्थित होता है। इसका मुख्य काम होता है मांसपेशियों की क्रिया को समन्वित और नियमित करना।

मस्तिष्क, आगे से पीछे की ओर ऊर्ध्वाकार में बायें और दायें गोलार्धो में बंटा होता है। प्रत्येक गोलार्ध को, और आगे चार खंडों में बांटा जा सकता है। प्रत्येक खंड के कार्य अलग-अलग हैं। अगले खंड का संबंध गतिविधियों और मनोभावों से है। पिछली तरफ का खंड, अन्य कार्यो के साथ-साथ, देखने का भी कार्य करता है। नीचे की तरफ का खंड यादाश्त को संजोने का महत्वपूर्ण कार्य करता है, जबकि ऊपरी खंड, सुनने, देखने, सूंघने और स्पर्श के अनुभवों को एक दूसरे से जोड़ने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यद्यपि दिमाग का आकार बुद्धिमत्ता का सूचक होता है, किंतु उससे भी ज्यादा जरूरी होता है मस्तिष्क वल्कुट, जो ऐसी सामग्री का बना होता है, जिसे आमतौर पर धूसर द्रव्य या अंग्रेजी में 'ग्रे मैटर' कहते हैं। यहां दिमाग की सूचना



दिमाग के वाणी क्षेत्र—ब्रोका क्षेत्र (बायें), वर्निक क्षेत्र (दायें)।

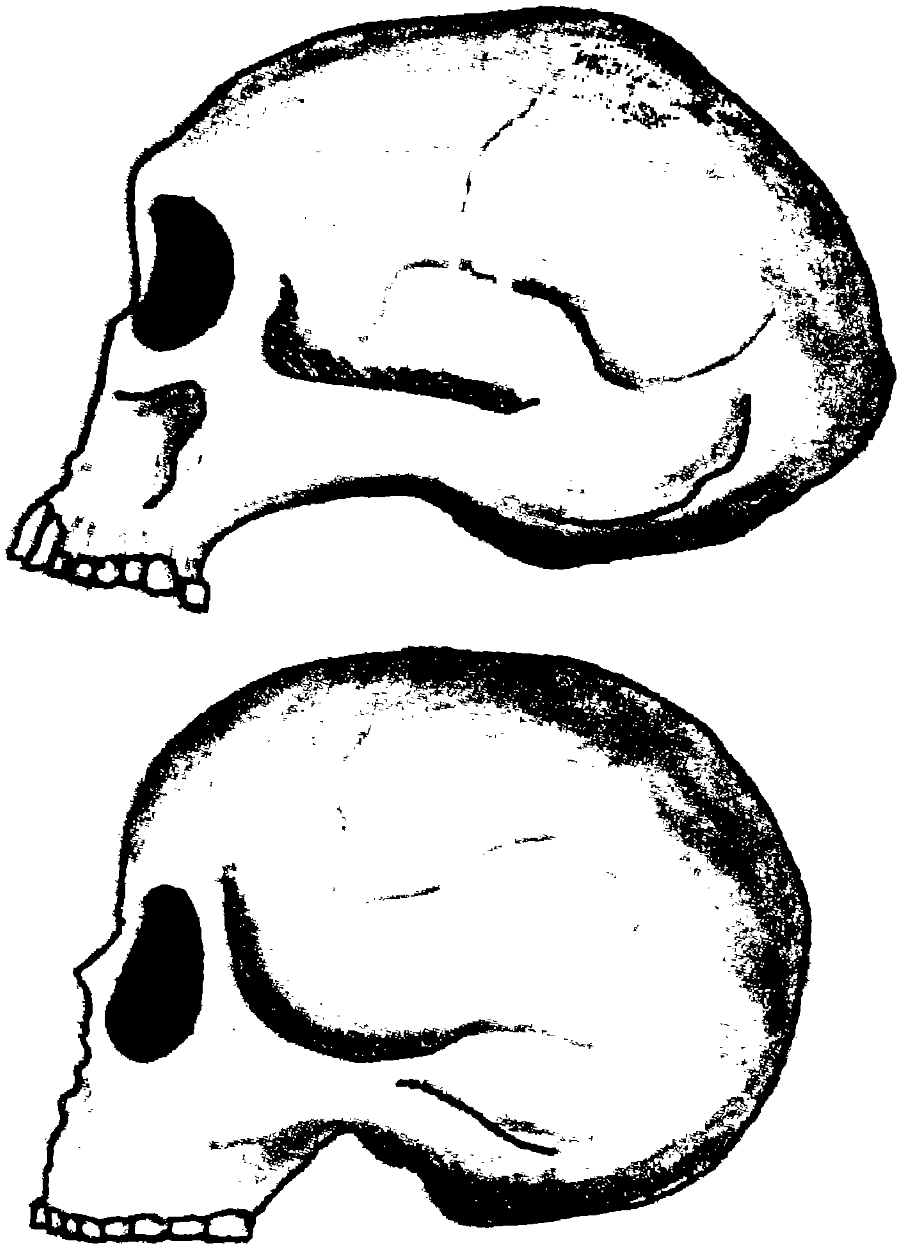
एकत्रित होती है और उसका मंथन होता है। ज्यों-ज्यों दिमाग का आकार बढ़ता चला जाता है त्यों-त्यों मस्तिष्क वल्कुट का क्षेत्रफल भी बढ़ता चला जाता है। किंतु मानवों में मस्तिष्क वल्कुट का क्षेत्रफल दिमाग के आकार के अनुपात में जितना बड़ा होना चाहिए उससे कहीं अधिक होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मानवों में मस्तिष्क वल्कुट वैसा चिकना नहीं होता जितना कि दूसरे पशुओं का होता है, या प्राचीन मानव पुरखों का हुआ करता था। इसमें बहुत अधिक संख्या में सलवटें पड़ी होती हैं, जिनके कारण खोपड़ी के भीतर काफी धूसर द्रव्य समा जाता है।

तंत्रिका विशेषज्ञों ने दिमाग में दो ऐसे भाषा केंद्रों की पहचान की है, जो हमें वाचित शब्दों को प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करते हैं। इन्हें उन्नीसवीं शताब्दी के अनुसंधानकर्ताओं, पाल ब्रोका और कार्ल वर्निक के नाम पर वर्निक क्षेत्र और ब्रोका क्षेत्र नाम दिये गये हैं। इन दोनों क्षेत्रों में ब्रोका क्षेत्र अधिक प्रमुख है, और यह दिमाग के बायीं तरफ आगे की ओर एक उठे हुए पिंड के रूप में दिखायी देता है। इसलिए मानव पूर्व जातियों के दिमाग में ब्रोका क्षेत्र का होना या होना उनकी भाषण क्षमता का सूचक माना जाना चाहिए।

यह निश्चित करने के लिए कि क्या हमारे मानव पुरखों में से कोई हमारी तरह से वाचित शब्दों का इस्तेमाल कर पाते थे या नहीं, या फिर उन्हें मौखिक संप्रेषण के लिए गुर्राना, घुरघुराना य कुछेक अन्य ध्वनियों का प्रयोग करना पड़ता था, दो सूचक काम में लाये जाते हैं। एक है गले में स्वरयंत्र की स्थिति और दूसरा दिमाग में ब्रोका क्षेत्र की मौजूदगी। दुर्भाग्यवश इन दोनों में से किसी का भी हमें सीधा प्रमाण नहीं मिलता क्योंकि इन दोनों अंगों के अवशेष बचे नहीं रह पाते। किंतु कुछ ऐसे परोक्ष तरीके जरूर हैं जिनका काफी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

बंदरों और प्राचीन तथा आधुनिक मानवों की सैंकड़ों जीवाश्म खोपड़ियों का अध्ययन करने के बाद माउंट सिनाई हास्पिटल मेडिकल स्कूल, न्यूयार्क के जेफरी लैटमैन और उनके सहकर्मियों को मालूम हुआ कि स्वरयंत्र की स्थिति और खोपड़ी के आधार की आकृति के बीच एक आश्चर्यजनक संबंध होता है। बंदरों के मामले में जिनका स्वरयंत्र गले में काफी ऊपर होता है, खोपड़ी का आधार काफी चपटा होता है। उसकी तुलना में मानवों का स्वरयंत्र गले में नीचे की ओर स्थित होता है और खोपड़ी का आधार साफतौर पर चापाकार होता है। *होमो इरेक्टस* और बाद में होमीनिड वर्गीय जीवों की जीवाश्म खोपड़ियों का अध्ययन करने के बाद लैटमैन को यह पता चला कि आधार की आकृति में हुए परिवर्तन लगभग 16 लाख वर्ष पहले से ही सुस्पष्ट हो गये थे। यह लगभग वह समय था जब *होमो इरेक्टस* अस्तित्व में आ चुके थे। किंतु नीएंडरतलों में भी यह चापाकार इतना पर्याप्त नहीं था जो उन्हें आधुनिक मानवों की सी वाणी क्षमता प्रदान करता।

पुराने दिमागों में ब्रोका क्षेत्र का प्रमाण कुछ अधिक नाटकीय ढंग से सामने आया। जो वैज्ञानिक जीवाश्म खोपड़ियों का अध्ययन करते हैं उनकी जानकारी में यह बात रही है कि दिमाग उसे अपने में समाहित करने वाली खोपड़ी की भीतरी सतह पर साफ निशान छोड़ जाता है। यह भी मालूम हो चुका है कि तरल वनस्पति दूध का इस्तेमाल करके दिमाग की छाप का ढांचा आसानी से तैयार किया जा सकता है। यदि दिमाग में ब्रोका क्षेत्र था, तो वह ढांचे में साफ दिखायी देगा। होमो जाति के सबसे पुराने जीव, *होमोहैबिलिस* की 20 लाख वर्ष से थोड़ी कम पुरानी एक जीवाश्म खोपड़ी में ब्रोका क्षेत्र देखा गया, हालांकि ब्रोका क्षेत्र आधुनिक मानवों के ब्रोका क्षेत्र जितना सुविकसित नहीं था। ऐसा ब्रोका क्षेत्र और उसके साथ-साथ दिमाग के काफी छोटे आकार से यह मालूम होता है कि *होमो हैबिलिस* जाति में भाषा-क्षमताएं केवल प्रारंभिक अवस्था में ही थीं।



होमो इरेक्टस की खोपड़ी (ऊपर) का आधार आधुनिक मानवों की खोपड़ी की अपेक्षा अधिक चपटा है। खोपड़ी के आधार की आकृति वाणी क्षमता की द्योतक होती है।

अमरीकी जीवविज्ञानी राल्फ हैलोवे, जिन्होंने जीवाश्म खोपड़ियों का व्यापक अध्ययन किया था, के अनुसार, "भाषा का रूप निस्संदेह आदिम ही था, किंतु उसके साथ सीमित संख्या में कुछ ऐसी ध्वनियां जुड़ी हुई थीं जिनका सुव्यवस्थित ढंग से इस्तेमाल किया जाता था।" यह भाषा नर वानर समाज के सुविख्यात पहलू पर—मौखिक शोर मचाने की क्षमता पर आधारित थी, भले ही ऐसा शोर मचाने की उनमें अभिरुचि न रही हो।

जीवाश्म खोपड़ियों—उनके आधारों और आंतरिक ढांचों के आकार—के अध्ययन से अब यह पता चला है कि वाचित भाषा की प्रारंभिक क्षमता का आरंभ *होमो हैबिलिस* के आविर्भाव के समय से ही हो गया होगा। किंतु काफी बड़े और अधिक जटिल दिमाग वाले आधुनिक मानवों, *होमो सेपियन सेपियन* के आगमन के बाद ही भाषा अपना परिपक्व रूप धारण कर पायी और उसने मानव

विकास की प्रक्रिया को बदलने में एक निर्णायक भूमिका अदा की।

किंतु हाल ही में अनुसंधानों से यह पता चला है कि भाषा का संघटन उससे कहीं जटिल है जितनी कि कल्पना की जाती थी। उदाहरण के लिए वाणी के उच्चारण और उसे समझने के लिए केवल दिमाग के ब्रोका और वर्निक क्षेत्र की ही भूमिका नहीं रहती। अब हम यह जानते हैं कि इस प्रक्रिया में दिमाग का हर भाग शामिल होता है। इसलिए भाषा को बोलने और समझने की हमारी क्षमता के विकास संबंधी किसी स्पष्टीकरण के लिए हमें इस अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि केवल ध्वनि उत्पन्न करने वाले यंत्र और अत्यंत विकसित दिमाग का होना ही इस बात की गारंटी नहीं है कि कोई व्यक्ति बोलने में सक्षम हो जायेगा। लोगों को बोलना सीखना पड़ता है और इसके लिए सुनने और याद करने की अच्छी समझ होनी चाहिए। एक बच्चा लगभग 15 महीने की आयु प्राप्त करने पर अपने पहले 'शब्दों' का उच्चारण कर पाता है। वह जैसे-जैसे बड़ा होता चला जाता है दूसरे शब्द और उनके अर्थ सीखता चला जाता है। किंतु जब तक वह दूसरों को वे शब्द बोलते हुए नहीं सुनता, तब तक वह उन्हें सीख भी नहीं पाता। जो बच्चा जन्म से बहरा होता है, वह बिल्कुल सही स्वरयंत्र और सामान्य दिमाग होने के बावजूद सामान्य ढंग से बोलना नहीं सीख पाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस तरह से हम बोलते हैं, या बोली हुई बात को समझते हैं, वह बहुत कुछ जन्म के बाद घटने वाली घटनाओं पर निर्भर करता है। रोने और हंसने की तरह जिसके लिए किसी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं होती, बोलना और समझना कोई जन्मजात क्षमता नहीं है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि बोलने जैसी हमारी सरल सी क्रिया को, जिसके बारे में हम कभी सोचते ही नहीं, विकसित होने में लाखों वर्षों का लंबा समय लग गया। शुरुआत चाहे कैसे भी हुई हो—संभवतः आनुवांशिक परिवर्तन के कारण ही, हमारे बहुत पहले के पुरखों ने संप्रेषण का यह नया और अधिक बहुमुखी साधन ढूंढ़ निकाला हो, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि स्पष्ट भाषा बोल पाने की दक्षता ने आधुनिक मानव के विकास की लंबी यात्रा में एक ऐसा परिवर्तन ला दिया, जिसके बहुत दूरगामी परिणाम निकलकर सामने आये।

7

आधुनिक मानव की उत्पत्ति

दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस में एक स्थान है, क्रो-मैगनन। वहां 1868 में रेलवे लाइन बिछाने के लिए खुदाई करते समय, मजदूरों ने ऐसे प्राणी के जीवावशेष खोज निकाले, जिसे प्राचीनतम आधुनिक मानव, *होमो सेपियन सेपियन* कहा जा सकता है। पांच कंकालों के जीवावशेष से यह स्पष्ट था, कि वे ऐसे प्राणियों के थे, जिनका शारीरिक ढांचा आधुनिक मानवों के शारीरिक ढांचे से हूबहू मिलता-जुलता था। नीएंडरतलों की खोपड़ी से भिन्न इन प्राणियों की खोपड़ियों का माथा ऊंचा था, ठुड्डी साफ-साफ निकली हुई और भौंहों की हड्डियां काफी बैठी हुई थीं, जिससे उनकी शक्लें ऐसी दिखायी देती थीं कि उन्हें आधुनिक मानव की शक्लों से भिन्न नहीं माना जा सकता था। जिस स्थान पर इन प्राणियों के कंकाल मिले थे, उसके नाम पर इनका नामकरण किया गया—क्रो-मैगनन मानव। क्रो-मैगनन स्थलों के निकट पाये गये अन्य पशुओं, विशेषकर रेंडियरों और जंगली भैंसों के अवशेषों से यह प्रमाण मिलता है कि हमारे ये पुरखे औजार बनाने और शिकार कौशल में नीएंडरतलों से काफी अधिक आगे थे और उनमें अद्‌भुत कलात्मक योग्यता थी। किंतु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि खोपड़ियों के ढांचे से हम लगभग निश्चयपूर्वक यह बता सकते हैं कि उनके संप्रेषण की भाषा बोलचाल की भाषा थी, जो आधुनिक मानवों की सबसे बड़ी खूबी है।

क्रो-मैगनन मानव, पहला असली मानव था, जो लगभग 35000 वर्ष पहले यूरोप में बस गया था। किंतु दक्षिण अफ्रीका की एक गुफा में मिली, लगभग 110,000 वर्ष पुरानी मानव खोपड़ी से पता चलता है कि उसकी उत्पत्ति संभवतः 100,000 वर्ष पहले अफ्रीका में हुई थी। थर्मोल्यूमिनेंस या तापसंदीप्ति तकनीक का इस्तेमाल करते हुए इजरायल की कफजेह नामक गुफा में मिले उसी प्रकार के अवशेषों का समय 92,000 वर्ष पहले का निश्चित किया गया है। आधुनिक मानव की उत्पत्ति की जो भी तारीखें इससे पहले आकलित की गयी थीं उनकी तुलना में ये तारीखें न केवल काफी पुरानी थीं बल्कि इन्होंने आधुनिक मानव

के विकास के बारे में पिछली सभी धारणाओं पर शंकाओं को जन्म दे दिया था। उदाहरण के लिए, यदि आधुनिक मानव उतने पुराने थे, जितने कि नीएंडरतल मानव, तो जैसा कि पहले माना जाता था, आधुनिक मानव का 'विकास' नीएंडरतल मानव से कैसे हुआ ?

अधिकांश पुरा-मानवविज्ञानी अब इस बात पर सहमत हैं कि आधुनिक मानव और नीएंडरतल मानव दोनों का विकास एक ही वंश–*होमो इरेक्टस* से हुआ और वह भी अफ्रीका में। कोशिकाओं के माइटोकांड्रिया में पाये जाने वाले आनुवांशिक पदार्थ डी.एन.ए. के विश्लेषण से वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस धरती पर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की वंश परंपरा का मूल एक ऐसी मादा में ढूंढ़ा जा सकता है, जो लगभग 200,000 वर्ष पहले अफ्रीका में रहती थी। यह निष्कर्ष इसलिए संभव है क्योंकि माइटोकांड्रिया में उपस्थित डी.एन.ए. मां से बच्चे में बिना बदले ही चला जाता है, जबकि कोशिका के केंद्रक में पाये जाने वाले डी.एन.ए. में आधा अंश मां से और आधा पिता से प्राप्त होता है। किंतु माइटोकांड्रिया में उपस्थित डी.एन.ए. प्राकृतिक उत्परिवर्तनों के कारण समय के साथ-साथ बदलता रहता है और इन परिवर्तनों की दर कमोबेश समान रहती है। इसलिए अलग-अलग आबादियों में माइटोकांड्रिया के डी.एन.ए. में विभिन्नता की मात्रा की तुलना करने पर, उस समय का हिसाब लगाया जा सकता है, जो किसी आबादी की उत्पत्ति से लेकर अब तक बीता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हम सब एक ही मां की संतान हैं और वह थी 'हौवा', जो लगभग 200,000 वर्ष पहले अफ्रीका में रहती थी।

अब ऐसा लगता है कि 400,000 और 200,000 वर्ष पहले की समयावधि के बीच *होमो इरेक्टस* में असाधारण परिवर्तन होना आरंभ हुआ था। इस दौरान दिमाग के आकार में बहुत बड़ी बढ़ोत्तरी और खोपड़ी की हड्डी के पतले होने की शुरुआत हुई थी और यह प्रक्रिया 250,000 वर्ष पहले तक चलती रही, जब सबसे पहले *होमो सेपियन* की उत्पत्ति हुई। शरीर के कुछ छोटे-छोटे अवयवों को छोड़कर, वे आधुनिक मानवों जैसे ही दिखाई देते थे और उन्हें नाम दिया गया *होमो सेपियन नीएंडरथालिस* या नीएंडरतल मानव। 120,000 वर्ष पहले का समय आते-आते होमो सेपियन सेपियन या आधुनिक मानव अस्तित्व में आ चुके थे। इस प्रकार 100,000 वर्ष पहले दो प्रजातियां मौजूद थीं, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि वे साथ-साथ रहती रही हों। सबसे पहले नीएंडरतल लगभग 250,000 वर्ष पहले अफ्रीका से बाहर गये। आधुनिक मानव उसके 200,000 से अधिक वर्ष बाद वहां गये। इन्हीं प्राणियों के अवशेष 1868 में क्रो-मैगनन में खोजे गये।

क्रो-मैगनन मानव लगभग 35000 वर्ष पहले यूरोप में पहुंचा। यह वह समय था जब पुरा-पाषाण युग, या उत्तरवर्ती हिमयुग का आरंभ हुआ। इस अवधि में हमारे पुरखों के रहने-सहने और काम करने के ढंग में असाधारण परिवर्तन आया। यह वह समय था, जब यूरोप का अधिकतर भाग उत्तरवर्ती हिमयुग की चपेट में था और हमारे पुरखों को इसका सामना करने के लिए नयी-नयी खोजें करनी पड़ीं। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि यूरोप में क्रो-मैगनन के विभिन्न स्थलों पर जो जीवावशेष मिले हैं, उनसे नये-नये विचारों और व्यावहारिक प्रगति के ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जो मानव के पूरे अतीत की सबसे उत्तेजित करने वाली कहानियों में से एक हैं। यहां के अनेक स्थलों पर मिले औजार निश्चित रूप से वास्तविक खोजों के प्रतीक हैं। पुरा-पाषाण युग के औजार निर्माता केवल स्थानीय रूप से उपलब्ध पत्थरों से ही औजारों का निर्माण नहीं करते थे। वे एक ऐसी खास किस्म की चट्टान के टुकड़ों का प्रयोग करते थे, जो कठोर होती थी और इन टुकड़ों को आधुनिक चाकुओं के फलकों जैसी तीखी धार वाले फलकों का आकार दिया जा सकता था। नीएंडरतल जितने पत्थर से धारदार किनारा तैयार कर पाते थे उनके उत्तरवर्ती ये कारीगर पत्थर की उतनी मात्रा से उससे दस गुना अधिक इस्तेमाल लायक तेज फलक तैयार कर लेते थे।

इन प्रारंभिक आधुनिक मानवों ने एक नया आविष्कार किया। यह आविष्कार था पत्थरों के औजारों में जड़ा जाने वाला लकड़ी का या हड्डी का बना 'हत्था'। इस नये आविष्कार की बदौलत वे पत्थर के औजारों का अधिक कुशलतापूर्वक इस्तेमाल कर पाते थे, जैसा कि आज हम लोग करते हैं। हम भी चाकुओं, कुल्हाड़ियों और दरातियों का इस्तेमाल बिना हत्थों के नहीं करते। ये प्रारंभिक मानव इन औजारों का इस्तेमाल अपने पूर्ववर्तियों की तरह केवल काटने और खुरचने के लिए ही नहीं करते थे, बल्कि छेनी और भेदन औजारों के रूप में भी करते थे। सैंकड़ों स्थलों पर चट्टानी शरण स्थलों में, जिनमें भारत में भोपाल के निकट भीमबेटका स्थित चट्टानी शरण स्थल भी शामिल हैं, पत्थर के बने ऐसे औजारों के अवशेष मिले हैं।

पूर्व-पाषाण युग की एक सबसे विशिष्ट खोज भाले के आकार के हथियार थे, जो हड्डी या हिरण के सींग के बने होते थे। लगभग 20000 वर्ष पहले तक इन लोगों ने एक घातक यंत्र ईजाद कर लिया था, जिसे 'अटलाट्ल' कहते हैं। इस यंत्र का इस्तेमाल वे अपने भालों को ज्यादा सही निशाने पर फेंकने के लिए करते थे। इसके अलावा इस यंत्र का इस्तेमाल करने पर भालों की गति भी हाथों से फेंके जाने वाले भालों की गति से कहीं अधिक हो सकती थी। जाहिर है कि



बड़े शिकार को मारने के लिए प्रारंभिक आधुनिक मानव द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला पुरा-पाषाणी भाला फेंकने का यंत्र

ऐसे उन्नत किस्म के घातक यंत्र से लैस होकर प्रारंभिक आधुनिक मानवों को अपने नीएंडरतल भाइयों की तरह बड़े शिकार को मारने के लिए अपने जीवन को खतरे में नहीं डालना पड़ता था।

केवल जीवावशेषों के रिकार्ड के आधार पर अतीत की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास करने में पेश आने वाली समस्याओं में एक समस्या यह है कि प्रायः इससे हम भ्रम का शिकार हो सकते हैं, क्योंकि हमारे बहुत पहले के पुरखे जिन चीजों का इस्तेमाल करते थे, हो सकता है उनके अवशेष ही न बचे हों। उदाहरण के लिए अवशेषों के रिकार्ड से यह पता नहीं लगाया जा सकता, कि क्या उस समय कपड़े का इस्तेमाल किया जाता था या नहीं। सौभाग्यवश कुछ अपवाद देखने में आये हैं, और कभी-कभी संयोगवश ऐसे अपवादात्मक अवशेष हमारे जीवाश्म विज्ञानियों के हाथ लगते रहे हैं। ऐसी ही एक सांयोगिक खोज चालीस के दशक के प्रारंभ में फ्रांस में लसकाक्स नामक स्थान पर चट्टानी शरण स्थलों के निकट की गयी थी। उस स्थल पर की गयी खुदाई से एक ऐसी चीज मिली जिसे रस्सी या डोर के इस्तेमाल का सबसे पहला ज्ञात प्रमाण माना जाता है। स्थल से खोदकर निकाली गयी खाद मिट्टी में किसी पौधे के गुंथे हुए रेशों की

निश्चित आकृतियां देखने को मिलीं। ये रेशे कुछ वैसे ही हैं जो आजकल सन या नारियल के रेशों के रस्से बनाने में इस्तेमाल किये जाते हैं। यह निश्चित रूप से उस समय के एक महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी विकास का नमूना रहा होगा, क्योंकि जो लोग रस्सा बनाने की कला में पारंगत थे, वे उसे अलग-अलग ढंग से इस्तेमाल करने की जानकारी भी अवश्य रखते होंगे। उदाहरण के लिए रस्से और डोरियां आसानी से जाल और फंदे बनाने में इस्तमाल की जा सकती हैं और इन जालों और फंदों की बदौलत उन्हें बनाने वाले लोग शिकार करने और मछली पकड़ने के कार्य में काफी कुशलता प्राप्त कर पाये होंगे।

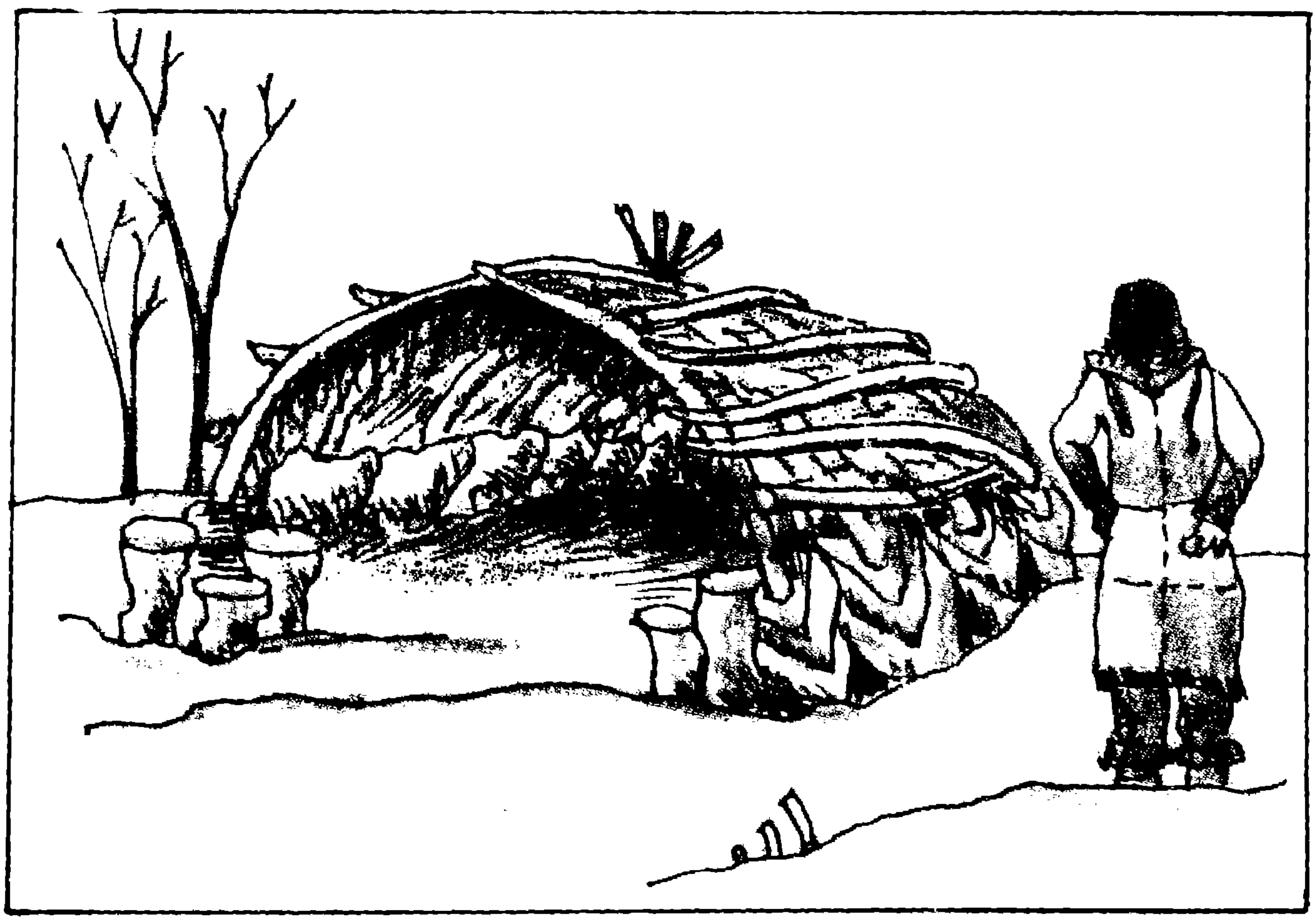
नीएंडरतल तो केवल मांस और कंद भूनने के लिए आग का इस्तेमाल करते थे किंतु क्रो-मैगनन और उनके समकालीनों ने आग का इस्तेमाल रोशनी और पानी उबालने के लिए भी किया। इन प्रारंभिक मानवों के दीये चूना-पत्थर की पटियाओं को खोखला करके तैयार किये जाते थे। वे तेल की बजाय संभवतः पशुओं की चर्बी का और मांस या डोरी की बाती का इस्तेमाल करते थे। यूरोप में पुरा-पाषाण स्थलों से ऐसे चूना पत्थर के सैंकड़ों दीये खोज निकाले गये हैं। इन स्थलों पर जमी हुई राख से यह पता चलता है कि लकड़ी और पशु-अस्थिओं का मुख्य रूप से ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

केवल दीये ही नहीं, बल्कि प्रारंभिक मानवों ने पानी उबालने का एक अनोखा तरीका भी विकसित किया। खाना पकाने के किसी बरतन के अभाव में इन लोगों ने जो तरीका अपनाया वह बेहद सरल था। पानी का बरतन आग पर रखने की बजाय वे सुर्ख लाल गरम बाटियों के रूप में आग को ही पानी में डाल देते थे। संभवतः धरती में खोदे गये खाल के अस्तर लगे गड्ढों में पानी डालकर यह प्रक्रिया अपनायी जाती थी। ऐसे तरीकों के इस्तेमाल का प्रमाण कई स्थलों पर टूटी हुई बाटियों से भरे गड्ढों के रूप में मिला है। जैसे लाल सुर्ख गरम पत्थर अचानक पानी से ठंडा किये जाने पर टूट जाता है, वैसे ही पत्थर की ये बाटियां भी ठंडे पानी का स्पर्श पाते ही टूट-फूट जाती होंगी।

इन लोगों के संबंध में एक और असाधारण बात थी कि वे गरम करने के लिए ईंधन बचाने का तरीका जानते थे, विशेष रूप से यूरोप के ठंडे पहाड़ी इलाकों में, शीतकाल के दौरान। फ्रांस और यूक्रेन में दो तिहाई से भी अधिक ऐसे स्थल, जहां प्रारंभिक मानव रहते थे, दक्षिण की तरफ वाली ढलानों और दक्षिणोन्मुखी खड़ी चट्टानों के आधारों पर स्थित हैं। इससे यह पता चलता है कि वे यह जानते थे कि ऐसे स्थल दिन के दौरान सूरज की गरमी को आत्मसात करते रहते हैं और रात के समय धीरे-धीरे निकालते रहते हैं।

आधुनिक मानव की तरह ही ये आदि मानव नदियों और झीलों जैसे जल स्रोतों के निकट रहना पसंद करते थे। यदि पानी पास होता था, तो वे आमतौर पर गुफाओं या चट्टानी शरण स्थलों पर रहना बेहतर समझते थे। किंतु बहुत से ऐसे स्थल खुले में भी पाये गये हैं जो प्रायः किसी गुफा या चट्टानी शरण स्थल से कई किलोमीटर दूर स्थित हैं। यूरोप में खोजे गये ऐसे 90 प्रतिशत स्थल या तो झरनों के निकट या फिर नदियों और झीलों के किनारों पर पाये गये हैं।

खुले वातावरण में स्थित स्थलों से मिले अवशेषों से ऐसा लगता है कि वे लोग अपने निवास स्थानों को सुरक्षित और आरामदेह बनाने के लिए उनका निर्माण बड़े ध्यान से करते थे। ये निवास स्थान बड़े ध्यान से तैयार की गयी नींवों पर निर्मित किये जाते थे। नींव बाटियों या पत्थरों से बने खड़ंजों या चबूतरों के रूप में होती थी। आदि निवास स्थल अधिक से अधिक सादे शंकु आकार के तंबू जैसे ढांचे के रहे होंगे, जिसे लकड़ी की बल्लियों या पशु अस्थिओं के ढांचे पर खाल को फैलाकर तैयार किया जाता होगा। किंतु 15000 वर्ष पूर्व का समय आते-आते शानदार वास्तुकला के नमूने विकसित हो चुके थे। यूक्रेन में

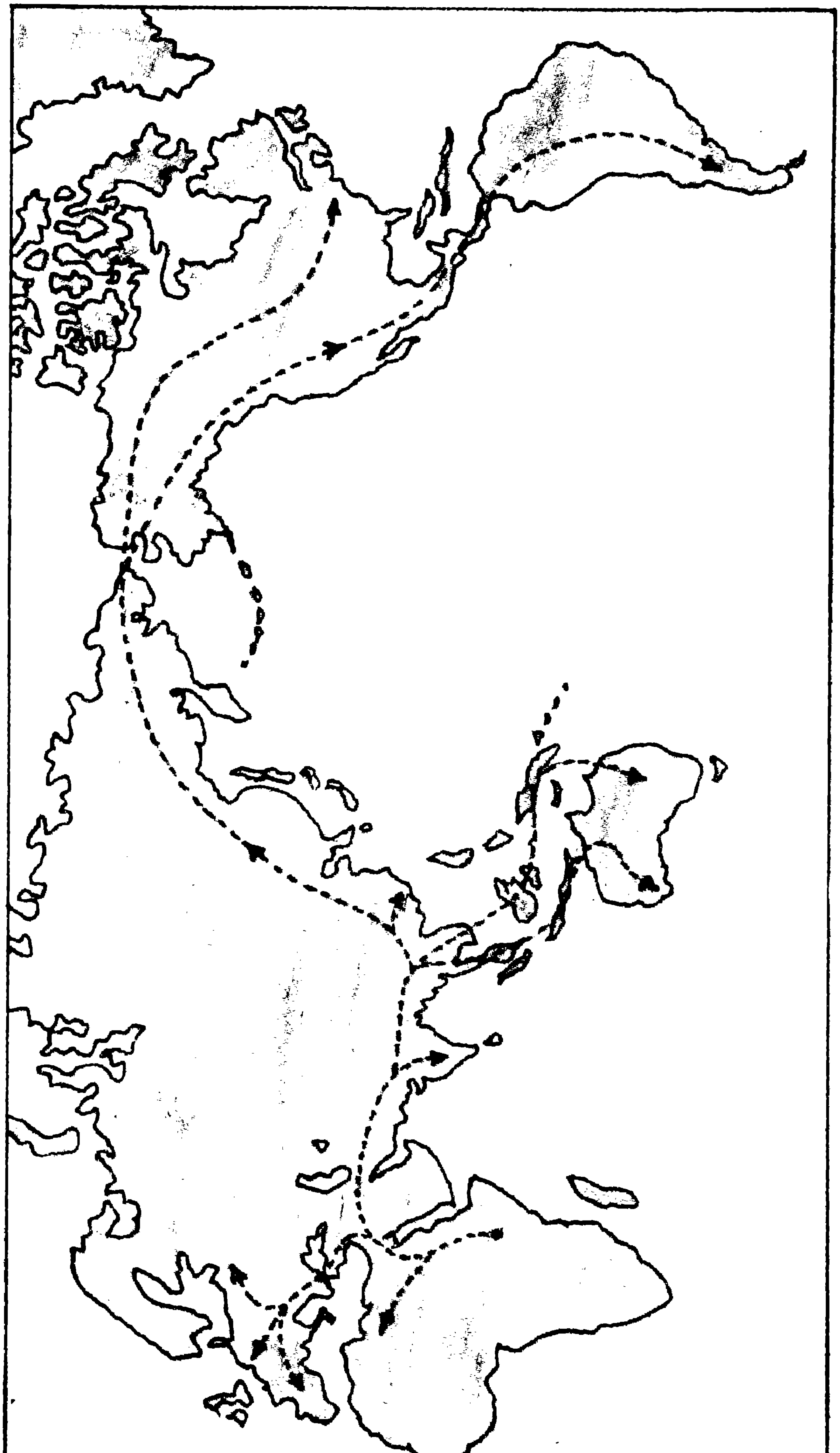


हड्डियों से बने बृहदाकार आवास हमारे आदि पुरखों की वास्तुकला के प्रमाण हैं।

खोजे गये एक दर्जन से अधिक स्थानों पर मिले शरण स्थलों के अवशेषों से हमें यह पता चलता है कि यहां इमारती सामग्री मुख्यतः आज के हाथियों के बृहदाकार, रोएंदार पूर्वजों की हड्डियां हुआ करती थीं। एक स्थान पर 24 वर्ग मीटर के केवल एक बड़े आवास को बनाने में ऐसे 95 बृहदाकार पशुओं की हड्डियों का इस्तेमाल किया गया था। एक अनुमान के अनुसार 10 पुरुषों और महिलाओं ने इसे छह दिन में तैयार किया होगा, और इसे बनाने में 21000 किलोग्राम हड्डियों का इस्तेमाल किया गया होगा। दिलचस्प बात यह है कि वे हड्डियां संभवतः शिकार में मारे गये पशुओं की न होकर बहुत पहले मर चुके पशुओं के कंकालों की थीं जिन्हें आवास निर्माता आसपास से बटोर लाये होंगे। यह संभवतः प्राकृतिक संसाधनों के कल्पनापूर्ण वास्तुकलात्मक प्रयोग के प्राचीनतम उदाहरणों में से एक था। प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा इस्तेमाल आधुनिक मानव की विशेषता है।

कई पुरा-पाषाणयुगीन स्थलों पर खुदाई करने से यह पता चला है कि 24000 वर्ष पहले का समय आते-आते, लोग कपड़े सीने की कला जानने लगे थे। हालांकि उस समय के लोग जो कपड़े पहनते थे, वे सुरक्षित नहीं बच पाये हैं। उन सब का क्षय हो गया होगा। किंतु हम इतना भर जरूर जानते हैं कि वे सिले हुए कपड़े पहनते थे क्योंकि निवासस्थलों पर से हाथी दांत या हड्डी की बनी नोकवाली सुइयों के कुछ नमूने बरामद हुए हैं। ये सुइयां लगभग 8 से 10 सेंटीमीटर लंबी हैं। उनके एक तरफ तीखी नोक है और दूसरी तरफ बहुत छोटा-सा नाका। यह सुई बहुत कुछ उन लोहे की लंबी सुइयों से मिलती-जुलती है, जिनका इस्तेमाल आजकल हम बोरियां सीने के लिए करते हैं। सीने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला 'धागा' संभवतः किसी पशु की नस या किसी पौधे का लंबा रेशा हुआ करता था। सीने के लिए चाहे किसी भी सामग्री का इस्तेमाल किया जाता रहा हो लेकिन इस बात में कोई संदेह नहीं कि पुरा-पाषाणयुगीन लोग सिले हुए कपड़े पहनते थे, जो संभवतः पशुओं की खाल से तैयार किये जाते थे।

यदि वे सिले हुए कपड़े पहनते थे तो वे दिखते कैसे थे ? उत्तरी रूस में सनगीर नामक जगह के एक 24,000 वर्ष पुराने स्थल पर की गयी खुदाई से हमें इसका भी अंदाजा मिल जाता है। यहां मिले कंकालों पर पत्थर और हाथी दांत के हजारों मनके पाये गये। यह स्पष्ट है कि ये मनके मृत व्यक्तियों द्वारा पहने गये खाल के वस्त्रों पर टांगे गये होंगे। कंकालों पर से मिले मनकों की रूपरेखा से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उस पोशाक में ऐसे वस्त्र शामिल थे जिन्हें हम 'सिर तक ओढ़े जाने वाले कुरते (ट्यूनिक) और एक टुकड़े से बनी पैंट/बूट का जोड़ा' कह सकते हैं।



12000 वर्ष पहले तक आधुनिक मानव लगभग सभी देशों तक फैल गये थे।

यूरोप और दक्षिण पूर्वी एशिया से फैलती हुई, आधुनिक मानव आबादी नये महाद्वीपों–उत्तर में उत्तरी अमरीका और दक्षिण में आस्ट्रेलिया–तक पहुंची। इन दो महाद्वीपों के स्थलों से मिले पत्थर के औजारों से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पुरखे, दक्षिण पूर्वी एशिया से कम से कम 100 किलोमीटर खुले समुद्र को पार करके लगभग 50,000 वर्ष पहले आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी (जो उस समय भू-सेतुओं से जुड़े हुए थे) पहुंचे। यह निश्चित है कि जो लोग पहले-पहल जाकर आबाद हुए वे बेड़े और किश्तियां बनाना जानते थे। आस्ट्रेलिया में विभिन्न स्थलों पर पाये गये पत्थर के लगभग सभी औजार उन्नत किस्म के हैं। उनमें मुख्यतः अलग-अलग किस्म की खुरचनियां पायी गयी हैं।

हमारे पुरखे उत्तरी अमरीका में काफी बाद में–लगभग 15,000 वर्ष पहले–जाकर बसे। और हो सकता है वे जमीन के रास्ते से गये हों। बर्फ के छा जाने और उसके परिणामस्वरूप समुद्र-तलों के गिर जाने के पिछले रिकार्डों से हमें पता चलता है 25000 और 12000 वर्ष पहले के बीच एशिया और उत्तरी अमरीका एक भू-भाग से जुड़े थे, जिसे अब बेरिंजिया कहते हैं, जहां अब बेरिंग जलडमरूमध्य स्थित है। एशियाई शिकारियों और उनके परिवारों के छोटे-छोटे समूह मौसमी प्रवासों के दौरान हाथियों के झुंड का पीछा करते हुए, अपने महाद्वीप को पार कर उत्तरी अमरीका जा पहुंचे होंगे। जब लगभग 12000 वर्ष पहले समुद्र तल दोबारा चढ़ा तो कुछ प्रवासी अलास्का में ही रुके होंगे और बाद में दक्षिण की तरफ जाकर उन्होंने बाकी उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमरीका में अपनी बस्तियां बसा ली होंगी। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के बहुत से स्थलों पर खुदाई करने पर बहुत उत्तम किस्म के पत्थरों के औजार और हाथियों तथा जंगली भैंसों की हड्डियां मिलीं, जो पहले-पहले अमरीकियों के प्रौद्योगिक कौशल की साक्षी हैं।

किंतु प्रौद्योगिकी से भी बढ़कर हमारे आदि मानव पुरखों के जीवन का सबसे अधिक जाना जाने वाला परंतु सबसे कम समझा जाने वाला पहलू है उनकी असाधारण कलाकृतियां जो उन्होंने उस दौरान रचीं। विश्व भर के सैंकड़ों स्थलों पर अद्भुत गुफा-चित्र और उत्कृष्ट मूर्तियां ढूंढ़ निकाली गयी हैं।

8

कला का भंडार

किसी भी प्रकार की कला मानव की सजनात्मक अभिव्यक्ति होती है। यह कोई ऐसी क्रिया नहीं है जो जिंदा रहने के लिए जरूरी हो, जैसे शिकार करना। मानव के आदि पुरखों ने जब पत्थरों को उपयोगी औजारों का रूप दिया तो उन्होंने ऐसा किसी सुंदर वस्तु की रचना करने की जिज्ञासा या प्रेरणावश नहीं किया। उन्होंने अपनी जरूरत को पूरा करने के लिए ऐसा किया और यह जरूरत थी भोजन के लिए शिकार करने की। कला के प्रारंभिक रूपों, जैसे लाशों को सजाने के लिए लाल गेरुए रंग का इस्तेमाल किये जाने के सबसे पहले प्रमाण नीएंडरतल कब्रिस्तानों से मिले हैं। किंतु मानव की सर्जनात्मकता के फलने-फूलने के प्रमाण लगभग 35000 वर्ष पहले, पुरा-पाषाण युग के दौरान देखने को मिले, जब आधुनिक मानव सबसे पहले यूरोप और एशिया में और बाद में आस्ट्रेलिया तथा उत्तरी अमरीका में जाकर बसा। कुछ अज्ञात कारणों से, यूरोप में बिखरे हुए शिकारी-संग्रहकर्ता समूहों में एक सांस्कृतिक क्रांति आयी। इतिहास में पहली बार मानव अपने स्वयं के और अपने इर्द-गिर्द के पशुओं के प्रतीकों की रचनाएं करने लगा। जिन गुफाओं और चट्टानी शरण स्थलों पर वे रहते थे वहां उन्होंने अपनी छाप छोड़ दी। पूरे यूरोप, एशिया और आस्ट्रेलिया भर में हजारों गुफाओं, चट्टानी शरण-स्थलों पर अनेकों सुंदर कलाकृतियां खोज निकाली गयी हैं, जिनमें चित्र और उकेरी हुई आकृतियां शामिल हैं। इनमें फ्रांस, स्पेन, भारत और आस्ट्रेलिया में पाये गये अद्‌भुत गुफा-चित्र, फ्रांस, जर्मनी और सायबेरिया में पाये गये उत्कीर्ण हाथी दांत और हड्डियों के आभूषण शामिल हैं। फ्रांस में एक पुरा-पाषाणयुगीन स्थल पर 25,000 वर्ष पुरानी बांसुरी के अवशेष मिले हैं जो किसी पक्षी की हड्डी से बनायी गयी थी। यह संगीत का एक प्राचीनतम प्रमाण है जो एक अन्य ऐसी रचनात्मक क्रिया है, जो केवल मानव में पायी जाती है।

उत्कीर्ण लघु मूर्तियां पुरा-पाषाणयुगीन स्थलों से बरामद की गयी सबसे पुरानी कलाकृतियों में से है और प्राचीनता को ध्यान में रखते हुए वे परिकल्पना

तथा प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से असाधारण रूप से उच्चकोटि की हैं। फ्रांस और पूर्व चेकोस्लोवाकिया में पाये गये, हाथी दांत और हाथी की हड्डियों पर उत्कीर्ण लगभग 26000 वर्ष पुराने मानव चेहरे, उनके निर्माताओं के श्रेष्ठ कला कौशल के परिचायक हैं। चेकोस्लोवाकिया के स्थलों से आग में पकायी गयी मानव तथा पशुओं की अनेक लघु मूर्तियां मिली हैं, जो कि संभवतः मृत्तिका-शिल्प कला के प्राचीनतम प्रमाण हैं।

पुरा-पाषाणयुगीन लोगों के उत्कृष्ट कलाकौशल की परिचायक सबसे आम कलाकृतियों में से एक हैं—उत्कीर्ण लघुमूर्तियां जिन्हें आमतौर पर वीनस की मूर्तियों के रूप में जाना जाता है। ऐसी दर्जनों मूर्तियां यूरोप में अलग-अलग स्थानों से बरामद की गयी हैं। इन लघुमूर्तियों में नारीत्व की अलग-अलग अवस्थाओं—यौवनारंभ, गर्भावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक को रूपित किया गया है। लेकिन इन मूर्तियों पर चेहरे के नैन-नक्श को किसी-किसी मूर्ति में ही उभारा गया है। अधिकतर मूर्तियों में स्तन बड़े-बड़े और लटकते हुए दिखाये गये हैं। ये लघु मूर्तियां, जिन्हें कोई भी भ्रमवश आसानी से आधुनिक कलाकृतियां समझ सकता है, संभवतः जनन क्षमता के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल की जाती थीं।

22000 से 18000 वर्ष पहले की समयावधि में उभरी हुई भू-आकृतियों के रूप में एक नयी तथा नाटकीय कला-विधा बहुत अधिक प्रचलन में आ गयी। एक आसानी से तराशे जा सकने वाले चूना पत्थर पर उकेरी गयी ये सुंदर मूर्तियां फ्रांस में पायी गयी थीं। इनमें घोड़ों, जंगली भैंसों, रेंडियरों, पहाड़ी बकरियों और कम से कम एक मूर्ति में मानव आकृति को चित्रित किया गया है।

यद्यपि उत्कीर्ण लघु मूर्तियां और उभरी हुई भू-मूर्तियां बहुत आकर्षक और श्रद्धा के योग्य थीं, किंतु हमारे आदि-पुरखों की कलात्मक क्षमता की सबसे प्रचुर अभिव्यक्ति यूरोप, एशिया, दक्षिणी अमरीका और आस्ट्रेलिया में अलग-अलग स्थलों पर स्थित गुफाओं और चट्टानी शरण स्थलों पर पाये गये रंगबिरंगे भित्ति चित्रों के रूप में देखने को मिली। अधिकतर लाल, गेरुए, भूरे और काले रंगों में चित्रित इन चित्रों की सबसे विशेष बात यह है कि एक दूसरे से हजारों किलोमीटर दूरी पर स्थित अलग-अलग स्थानों पर पाये गये चित्रों में पशु-आकारों को चित्रित करने की शैली और चित्रों की कुल मिलाकर बाह्याकृति एक जैसी है।

गुफा चित्रों का सबसे बड़ा खजाना दक्षिण पश्चिमी फ्रांस में स्थित लासकाक्स नामक स्थान पर 1940 में संयोगवश मिल गया। चार किशोर लड़के मोंटिग्नाक नामक गांव के निकट स्थित एक पहाड़ी पर स्थित जंगल की खोजबीन कर रहे थे कि उन्हें एक बड़े से पेड़ की जड़ों के बीच एक गहरा अंधकारमय

गड्ढा दिखायी दिया। लड़के दिलेर थे। चारों ने निश्चय किया कि देखा जाये उस गड्ढे के पीछे क्या है। उन्होंने रस्से के कुछ छोटे-छोटे टुकड़े, एक चाकू और घर का बना तेल का लैंप जुटाया। 12 सितंबर को उन्होंने पत्थरों के बने प्रवेश मार्ग और उसके नीचे उगी घास और झाड़ियों को साफ किया और एक-एक करके गुफा में दाखिल हो गये। उन्हें कुछ भी मालूम नहीं था कि उस अंधेरे पर्दे के पीछे क्या कुछ छिपा है। घुसने के तुरंत बाद, जैसे ही उनके लैंप की रोशनी गुफा की अंधेरी दीवारों पर पड़ी, तो उस टिमटिमाती रोशनी में उन्हें जाने-पहचाने पशुओं की आकृतियां दिखाई दीं। संयोगवश उन्हें पूर्व ऐतिहासिक कला का एक ऐसा खजाना मिल गया था, जो इस प्रकार खोजे गये सबसे बड़े खजानों में से एक था। चित्रों की प्राचीनता के लिहाज से वे 17,000 वर्ष पुराने थे। वे अब भी असाधारण रूप से ताजा लगते थे और अमूल्य थे।

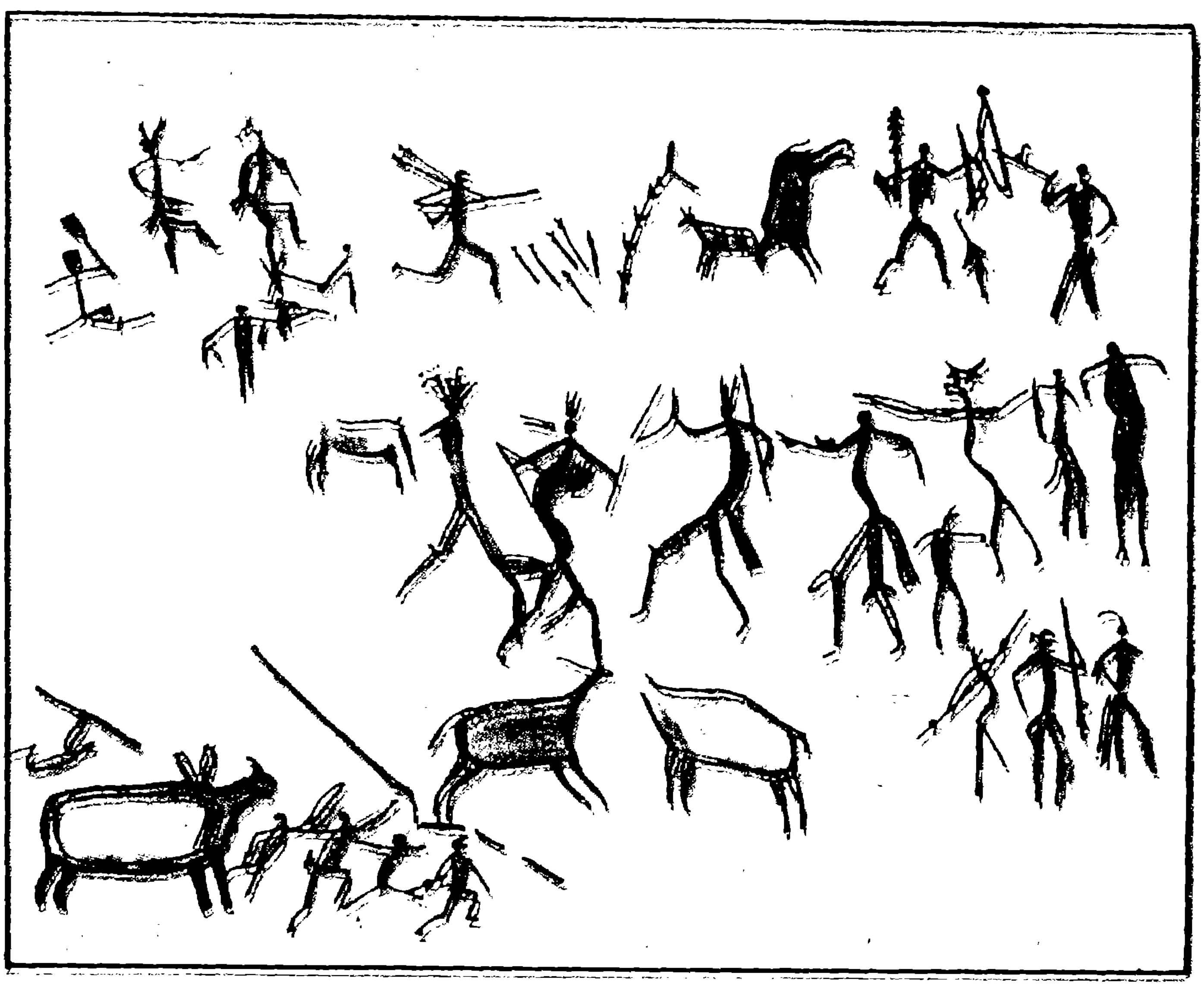
इसमें कोई संदेह नहीं कि जिन गुफा कलाकारों ने आश्चर्यजनक चित्र बनाये थे उन्होंने रोशनी करने के लिए पशुओं की चर्बी से जलने वाले दीयों और पांच मीटर ऊंची छत तक पहुंचने के लिए (जहां वे चित्र बनाये गये थे) किसी प्रकार के पाड़ का इस्तेमाल किया होगा। कुछ गुफाओं में, चट्टानी दीवार पर वे गड्ढे अभी तक दिखायी देते हैं जो शाखाओं के सहारे काम करने के चबूतरे तैयार करने के लिए बनाये गये होंगे।

गुफा कलाकारों द्वारा इस्तेमाल किये गये रंगलेप मुख्यतः खनिजों से ही तैयार किये गये थे जैसे लाल और पीले गेरुआ खनिज, मैंगनीज आक्साईड, हीमेटाइट और अन्य कच्ची धातुएं जिन्हें प्रायः भूनकर और पीसकर अलग-अलग रंग तैयार करने के लिए एक दूसरे में मिला दिया जाता था। रंगलेप को जलसह बनाने के लिए उसमें संभवतः चर्बी मिला दी जाती थी। प्रायः गुफा के जल का इस्तेमाल किया जाता था जिसमें घुला हुआ केल्शियम कार्बोनेट रंग को टिकाऊ बना देता था। रंग टहनियों और उंगलियों से लगाया जाता था। आमतौर पर लार मिले रंग की मुंह से पिचकारी की शक्ल में फुहार भी की जाती थी। संभवतः यह तरीका 'हस्तमुद्रण' तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था जो हजारों की संख्या में बहुत से पुरा-पाषाणयुगीन स्थलों पर गुफा दीवारों को सुसज्जित कर रहे हैं।

लासकाक्स की गुफाओं में 600 से अधिक चित्र और लगभग 1500 नक्काशियां मौजूद हैं। इन चित्रों और नक्काशियों में विरूपित पशुओं में बड़े-बड़े सांड, काले घोड़े, लाल और काले हिरण और यहां तक कि कल्पित पशु एकशृंग भी शामिल है। किंतु चित्रों में केवल एक मानव आकृति पायी गयी है। इसके

बिल्कुल विपरीत भारत में चट्टानी आवासों पर पाये गये चित्रों में मानव आकृतियां काफी बड़ी संख्या में हैं। भारत में कई गुफा आवासों में चट्टानों पर चित्र अंकित पाये गये हैं। ये चट्टानी आवास उड़ीसा के रायगढ़ जिले में सिंघनपुर, बिहार में सिंघभूम जिले में घाटशिला, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में, कर्नाटक के बेल्लारी जिले में, और मध्य प्रदेश के भीमबेटका जिले में स्थित हैं। सिंघनपुर के शिला चित्रों में घोड़े और हिरणों के साथ शिकार के दृश्य और मुखौटा ओढ़े, नृत्य मुद्रा में आकृतियां चित्रित की गयी हैं। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले की कैमूर पहाड़ियों के चट्टानी आवास में बने चित्रों में शिकार के ऐसे दृश्य चित्रित किये गये हैं, जिनमें पुरुषों को कांटेदार बर्छियों के साथ गैंडों पर वार करते हुए दिखाया गया है। बेल्लारी जिले के चट्टानी आवासों में पशु रेखांकनों तथा चित्रों के 20 से अधिक समूह पाये गये हैं। इनमें शिकार के ऐसे दृश्य अंकित किये गये हैं, जिनमें पुरुषों को भालों और ढालों से लैस दिखाया गया है।

किंतु शिला-चित्रों की सबसे जबरदस्त खोज भोपाल के दक्षिण में



भीमबेटका के गुफा चित्र, जिनमें शिकारियों को तीरकमान और भाले लिये शिकार का पीछा करते हुए दिखाया गया है।

भोपाल-होशंगाबाद मार्ग से लगी हुई पहाड़ियों में की गयी। यहां 200 से भी अधिक चट्टानी शरण स्थल हैं, जिनमें से लगभग 130 पर प्रागैतिहासिक चित्र अंकित पाये गये हैं। ये चित्र 1958 में, भारतीय शिला चित्रकला के एक जोशीले अन्वेषक वी.एस. शकनकर द्वारा खोज निकाले गये। अधिकतर लाल और सफेद रंगों में चित्रित ये चित्र न केवल भारत में चित्रकला का प्राचीनतम उदाहरण हैं, बल्कि 15000 और 8000 वर्ष पहले की अवधि के बीच, जब ये चित्र बनाये गये थे, उस समय जो स्थितियां रही होंगी उनके बारे में भी मूल्यवान सूचना देते हैं। भीमबेटका के चित्र इस क्षेत्र में हजारों वर्ष पहले विद्यमान पशुजीवन की एक अच्छी खासी तालिका प्रस्तुत करते हैं। इनमें गैंडे, तेंदुए, हाथी, जंगली भैंसे और जंगली बैल शामिल हैं।

लासकाक्स के चित्रों से अलग भीमबेटका के चित्र मानव आकृतियों से भरे पड़े हैं। इनमें मानव को घोड़े और हाथी पर सवार दिखाया गया है। इनमें से कुछ चित्रों में तो शिकार के चित्र दिखाई देते हैं। इनमें उस समय इस्तेमाल किये जाने वाले शिकार के अलग-अलग तरीके भी अंकित किये गये हैं—जैसे भालों, तीरकमानों से और जाल बिछा कर किये जाने वाले शिकार। कुछ ऐसे दृश्य भी अंकित किये गये हैं, जिनमें नर्तकों/नर्तकियों को नक्कारावादक के साथ दिखाया गया है। ये दृश्य कुछ वैसे ही हैं, जैसे आजकल भी बहुत से आदिवासी समुदायों में देखे जाते हैं। हजारों ऐसे चित्र जो 10,000 वर्ष पहले तक के हैं, उत्तरी आस्ट्रेलिया में खोजे गये हैं। इनमें भी जो पशु चित्रित किये गये हैं, वे वही हैं जो इस क्षेत्र में पाये जाते हैं—जैसे कंगारू, मगरमच्छ, एमू पक्षी, तस्मानियाई बाघ और इंद्रधनुषी सांप आदि। इन चित्रों में योद्धाओं के रूप में मानव को भी चित्रित किया गया है जिनके सिर पर विस्तृत शिरोवस्त्र और जिनके पास भाले फेंकने के यंत्र और बूमरैंग भी हैं जिनका इस्तेमाल आस्ट्रेलियाई आदिवासी जातियां हजारों वर्षों तक करती रही थीं।

उत्तर पूर्वी ब्राजील में पेदरा फुरादा नामक एक स्थल पर, जो एक चट्टानी शरण स्थल है, जो चित्र मिले हैं, उनमें से कुछ कम से कम 10,000 वर्ष पुराने हैं। ये चित्र अमेरिका की सबसे पुरानी ज्ञात गुफा कलाकृतियां हैं।

फ्रांस में खोजे गये बहुत से गुफा चित्रों की विशेष बात यह है कि उन तक पहुंच पाना अपेक्षाकृत काफी मुश्किल है। अधिकांश चित्र गुफाओं के काफी भीतरी हिस्सों में हैं जहां बहुत मुश्किल से पहुंचा जा सकता है। एक और दिलचस्प बात यह है कि चित्रित पशुओं में से 1/6 पशुओं पर ऐसे निशान हैं, जिन्हें भाले के निशान या जख्म समझा जा सकता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये शिला

चित्र और नक्काशियां, साधारण कलाकृतियां न होकर, (जैसा कि उन्हें कभी समझा जाता था) उससे बढ़कर हैं। संभवतः वे पुरा-पाषाणयुगीन लोगों द्वारा अपनायी गयी किसी व्यापक अनुष्ठान प्रथा का हिस्सा हो सकती हैं। इस प्रथा को 'सहानुभूति जादू' बताया गया है। कला के माध्यम से ऐसा संकेत दिया गया है कि जिन पशुओं का शिकार किया जाता था उनकी संख्या बढ़ाकर शिकार में पक्की सफलता हासिल करने का प्रयास किया जाता था। कम से कम यूरोप में पुरा-पाषाणयुगीन लोग शिकारी पशुओं की संख्या में वृद्धि करने और अपनी सफलता सुनिश्चित करने के लिए भूमि के नीचे गहरे घुसकर कुछ अनुष्ठान किया करते थे। इस प्रकार वे पर-भक्षियों पर एक तरह से आनुष्ठानिक नियंत्रण रखने का प्रयास करते थे। कलाकार चित्रित पशुओं के शरीर पर भाले या जख्म चित्रित करके उनकी आनुष्ठानिक रूप से 'हत्या' कर देते थे। चित्रों में कुछ अमूर्त आकृतियां पहचानी गयी हैं, जिन्हें जाल या फंदा माना जा सकता है, जिन्हें चित्रित पशुओं को आनुष्ठानिक रूप से फांसने के लिए चित्रित किया गया था।

इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि भूमिगत गुफा कला का प्रयोग कुछ सामाजिक अनुष्ठानों के लिए भी किया जाता था जैसे लड़कों और लड़कियों के वयस्कता में कदम रखने से संबंधित धर्मानुष्ठानों के लिए। फ्रेंच पायरेनीस में ले टक द' अडौबर्ट की भूमिगत गुफा में, एक जंगली भैंसे और जंगली भैंस के जोड़े की 15000 वर्ष पुरानी मूर्तियां मिली हैं जो मैथुन अवस्था में दिखायी देता है। पास के एक कक्ष में कई युवाओं और युवतियों के पद चिह्न मिट्टी में जमकर घनीभूत हो गये हैं, जो किसी दीक्षा समारोह के दौरान किये गये आनुष्ठानिक नृत्य के अंकित निशान हो सकते हैं। आखिर प्रागैतिहासिक कला केवल सर्जनात्मक क्रिया ही नहीं थी, बल्कि उसका कोई उद्देश्य भी होता था।

प्रयोजन चाहे कुछ भी रहा हो किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि पुरा-पाषाणयुगीन लोगों की कला-विशेषज्ञता 2600 से 9000 वर्ष पहले के बीच फ्रांस और स्पेन में अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी। इसके प्रमाण हमें पत्थर, हड्डी, हाथी दांत और मिट्टी में ढली यथार्थवाद की उत्कृष्ट शिल्पकृतियों में मिल जाते हैं। ये लोग लकड़ी शिल्प जैसे शिल्पों में भी पारंगत रहे हो सकते हैं, किंतु इसका कोई भी प्रमाण नहीं बचा है। काल के प्रकोप को झेलते हुए, जो कुछ भी बचा है, उसके आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उस कला को जन्म देने वाले कलाकार अत्यंत उच्चकोटि के थे, विशेष रूप से पशु-रूपों को आकार देने में। इस प्रकार की परिष्कृत पशु-कला, बाद के काल खंडों में कृषि सभ्यता के आविर्भाव से पहले दोबारा नहीं देखी गयी।

9

पहली फसल

असली आधुनिक मानव की उत्पत्ति का सही-सही समय बता पाना कठिन है। पारंपरिक दृष्टि से जैसा कि हम पहले जान चुके हैं, पेरिस के निकट क्रो-मैगनन में रेलवे लाइन के लिए खुदाई करते समय मजदूरों द्वारा पाये गये 40,000 वर्ष पुराने कंकाल आधुनिक मानवों के पहले उदाहरण माने जाते हैं। किंतु हर कोई इससे सहमत नहीं है। यह दलील दी जाती है कि जब कृषि सुस्थापित हो रही थी, तभी असली आधुनिक मानव की उत्पत्ति हुई। यह बात सही हो सकती है, क्योंकि जब मानव ने चारे की खोज और शिकार करने की खानाबदोश जिंदगी छोड़ दी, तभी जाकर संस्कृतियां फली-फूलीं। वे अपने कौशल का विकास करके कलाकार, वैज्ञानिक, कवि, उपन्यासकार, खोजकर्ता और न जाने क्या-क्या बने। जब हमारे पुरखों ने व्यवस्थित जीवन जीना सीख लिया तभी महान सभ्यताओं का विकास हुआ, जिन्होंने धरती का स्वरूप ही हमेशा के लिए बदलकर रख दिया।

बीस हजार वर्ष पहले जब हमारे पुरखे इस भूमंडल के कोने-कोने तक पहुंच चुके थे तब उनमें से अधिकतर चारा खोजने वाले और शिकारी थे। भोजन के लिए वे मुख्यतः जंगली पशुओं, जंगली फलों और कंदों पर निर्भर रहते थे। जैसे-जैसे सहस्राब्दियां बीतीं हमारी बुद्धि कुछ तीव्र हुई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि हमारा सामाजिक सांस्कृतिक ताना-बाना अधिक व्यापक होता चला गया और उसका ढांचा समृद्ध होता चला गया। 10,000 वर्ष पूर्व तक आते-आते, हम एक ऐसी क्रांति की दहलीज पर खड़े थे, जिसने विश्व की काया पलटकर रख दी।

लगभग 12,000 वर्ष पहले महाद्वीप अंतिम हिमयुग से मुक्त हो रहे थे। उत्तरी यूरोप के अधिकतर भाग पर छायी हुई हिम की एक विशाल परत अब हटती जा रही थी। जलवायु अधिक स्वास्थ्यकर होती जा रही थी। लगभग यही वह समय था, जब हमारे पुरखों ने अपनी एक नयी क्षमता विकसित की। उनको यह एहसास हुआ कि चारे की तलाश में कहीं जाये बिना और किसी जंगल से

अपना भोजन जुटाने की तकलीफ उठाये बिना वे भोजन के लिए फसलें उगा सकते थे।

यूरोप में, कृषि की शुरुआत के लिए हिम की परत का उठना एक बहुत बड़ा कारण हो सकता है, किंतु एकमात्र कारण नहीं। लगभग इसी समय अन्य जगहों पर भी लोगों के समूहों ने जीवन की इस नयी विधि को अपनाना शुरू कर दिया था। सेंट्रल अमरीका, भूमध्यसागर के दक्षिण-पूर्वी छोर और दक्षिण एशिया के कुछ भागों में, सब कहीं 10,000 वर्ष पहले के आसपास आदिम किस्म की कृषि की शुरुआत के प्रमाण मिलते हैं। इसी समय के आसपास मानव ने कुत्तों, भेड़ों और बकरियों जैसे पशुओं को पालना भी आरंभ कर दिया था। भेड़ों और बकरियों को दूध और मांस के लिए पाला जाता था। अचानक भोजन की व्यापक और पक्की व्यवस्था हो जाने से मानव जाति ने सुव्यवस्थित जीवन का एक नया तरीका अपना लिया था।

जलवायु संबंधी कारणों के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण प्राकृतिक उपादान भी कृषि-क्रांति का निमित्त बना—यह उपादान था भरे पूरे लंबे-लंबे दानों वाली गेहूं की दो किस्मों की उत्पत्ति। लगभग 10,000 वर्ष पहले, गेहूं का पौधा आज जितनी प्रचुर मात्रा में नहीं मिलता था। यह उन बहुत सी जंगली घासों में एक थी, जो पश्चिम एशिया में बहुतायत में उगा करती थी। इस बीच किसी दैवी आनुवांशिक घटना के कारण जंगली गेहूं का एक अलग किस्म की घास के साथ संकरण हो गया, जिसे 'गोट ग्रास' कहते थे। इस संकरण ने एक उर्वरक संकर गेहूं को जन्म दिया और उसमें से मोटे-मोटे दाने निकले। इस प्रकार गेहूं की एक ऐसी किस्म अस्तित्व में आयी, जिसे एम्मर नाम दिय गया। इसमें 28 गुणसूत्र मौजूद थे, जबकि इसकी तुलना में जंगली गेहूं में केवल 14 गुणसूत्र थे। आम रोटी बनाने के काम आने वाली 42 गुणसूत्र वाली गेहूं बाद में आयी, जब एम्मर गेहूं का दो बार प्राकृतिक 'गोट ग्रास' से संकरण हुआ। इस प्रकार प्राकृतिक और मानवीय घटनाओं के सुंदर मेल से वह कार्यकलाप आरंभ हुआ जिसे हम कृषि कहते हैं। एक तरह से यह मानव सभ्यता की शुरुआत थी।

कृषि का जन्म-स्थान पश्चिम एशिया का पहाड़ी क्षेत्र था, जिसमें आजकल के इजरायल, जार्डन, ईराक, केस्पियन नदी घाटी और उसके साथ जुड़ा हुआ ईरानी पठार शामिल हैं, जिसे आमतौर पर 'उपजाऊ क्रेसेंट' कहते हैं। इसी क्षेत्र में दो मुख्य अनाजों, गेहूं और जौ के जंगली पूर्वज और बकरी, भेड़, सुअर और मवेशियों जैसे पालतू पशुओं के पूर्वज मिलते हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र में खेती-बाड़ी के लिए आवश्यक सभी उपादान उपलब्ध थे, जिसमें उपजाऊ भूमि भी शामिल थी। किंतु



आदिम गेहूं की किस्में।

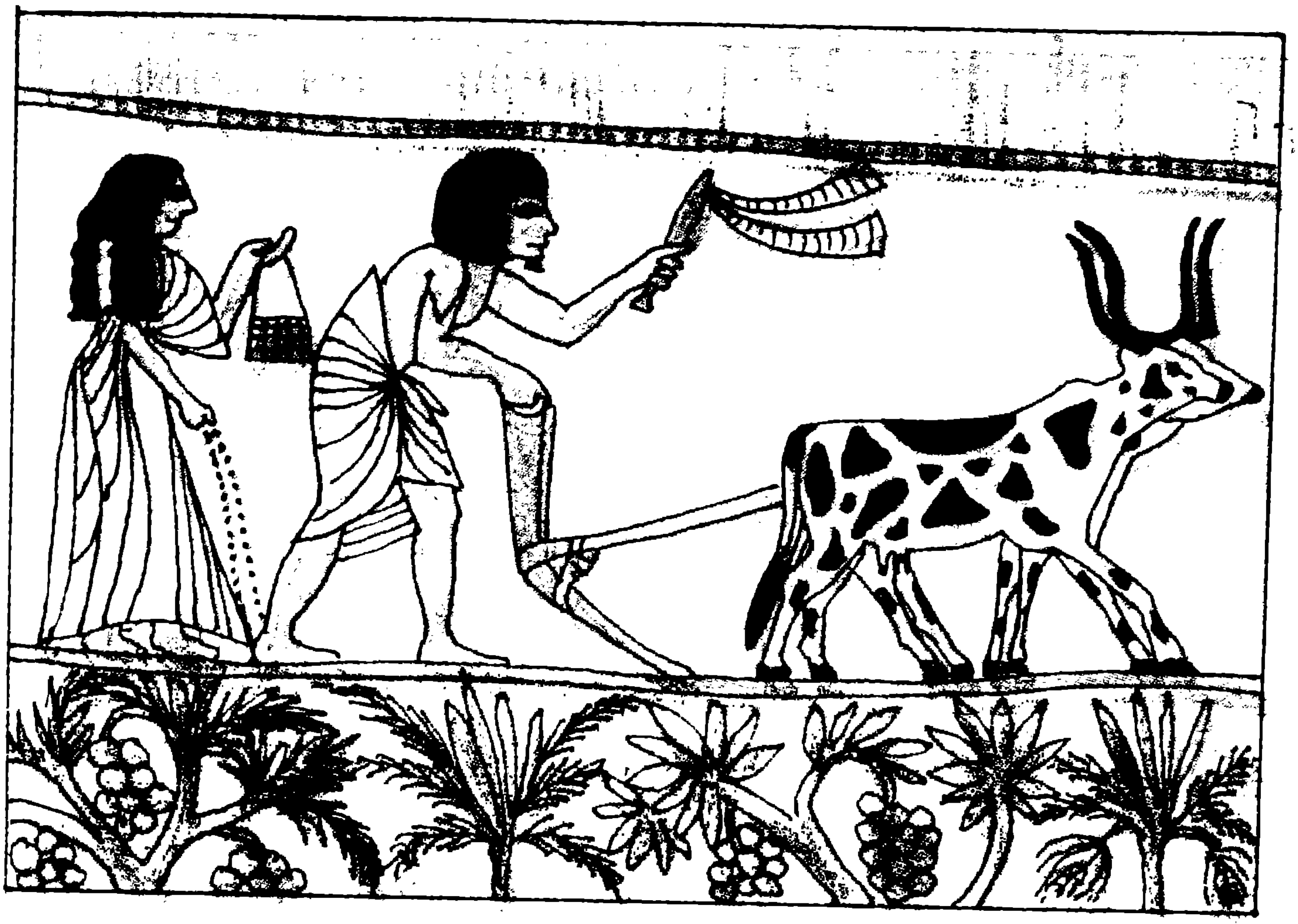
जो लोग वहां रहते थे, उनके दिमाग में खाद्य फसलें उगाने का विचार कैसे आया, यह बात सही-सही मालूम नहीं हो पायी। यह भी संभव है कि शुरू-शुरू में बसे हुए लोगों ने पहले-पहल गेहूं की फसल काटी हो, किंतु उन्हें इस फसल को बोने का ढंग न आता हो। हो सकता है कि गेहूं के दाने संयोगवश बिखर गये हों, और बाद में धरती में से उनके अंकुर फूट निकलने पर, वहां के प्राचीन निवासियों के दिमाग में, गेहूं को बो कर उसकी खेती करने का विचार आया हो।

पशुओं को घर में पालने की क्रिया कृषि क्रांति का सहज परिणाम थी। घर में पाले गये पशुओं, जैसे भेड़ों, बकरियों, गाय-बैलों से दूध और मांस मिल जाता है, और उनका गोबर एक पोषक खाद के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। भेड़ों और बकरियों के बालों को बुनकर कपड़े तैयार किये जा सकते हैं। बैलों आदि को हल चलाने और भार ढोने के काम लाया जा सकता है।

जिस समय कृषि का विकास हो रहा था, उसी समय के आसपास, आदि मानव औजार बनाने के नये-नये कौशल सीख रहे थे, जिनकी बदौलत एक ऐसे युग की शुरुआत हुई जिसे नवप्रस्तर युग का नाम दिया गया। इसकी विशेषता थी पत्थर के अधिक उन्नत और परिष्कृत औजारों के निर्माण की शुरुआत। इन औजारों में पत्थर की कुल्हाड़ी भी शामिल थी जिसका एक किनारा ध्यान से घिसकर धारदार बना दिया जाता था। इस उम्दा औजार के कारण नवप्रस्तरयुगीन मानव को वनभूमि पर अपने कदम जमाने में मदद मिली। वनों को साफ करके इन आदि किसानों ने फसलें उगाना शुरू किया। प्रायः ऐसा होता था कि आग से पेड़ों को जलाकर, साफ हुई जगह पर नुकीली लकड़ियों से अन्न के दाने बो दिये जाते थे। भारत में पहाड़ी आदिम जातियां अब भी ऐसा करती हैं।

बाद में पत्थर के ऐसे फावड़े ईजाद किये गये, जिनमें लकड़ी के हत्थे लगे होते थे। फसलें बोना ज्यादातर महिलाओं का काम होता था जो संभवतः कृषि की असली उत्पत्तिकर्ता हो सकती है। मवेशियों को घर में पालने की शुरुआत और हल की खोज के बाद (जो बहुत बाद की घटना है) महिलाओं को खेती-बाड़ी के कठोर परिश्रम से मुक्ति मिली। भारत के बहुत से भागों में, अब भी यद्यपि हल पुरुषों द्वारा चलाया जाता है, किंतु हल के पीछे-पीछे चलकर महिलाएं ही हल रेखा में बीज डालती हैं।

लगभग 4000 ई.पू. तक आते-आते, पश्चिम एशिया के भूमध्यसागरीय पूर्व तटीय क्षेत्र में कृषि, मानव जाति के सबसे अधिक उत्पादक उद्यमों में से एक उद्यम बन चुका था।



शुरू-शुरू का हल।

भारत में कृषि की शुरुआत लगभग 2500 ई.पू. सिंधु घाटी के निवासियों द्वारा हुई। उपजाऊ कछारी धरती, उस समय होने वाली भारी मानसून वर्षा और सिंधु नदी का पानी—ये सब मिलकर अनेक घरेलू पौधों को उगाने में सहायक सिद्ध होते थे। वास्तव में इतिहासकारों के अनुसार सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों की अर्थव्यवस्था कृषि उत्पादन पर ही निर्भर थी, जो पर्याप्त मात्रा में हुआ करती था। किंतु मेसोपोटामिया के लोगों को हल के इस्तेमाल की जो जानकारी प्राप्त थी, वह सिंधु घाटी के लोगों को नहीं थी। वे धरती को जोतने के लिए दांतेदार पटरे का इस्तेमाल करते थे।

सिंधु घाटी की कृषि में गेहूं, जौ, कपास और मटर की खेती शामिल थी। सिंधु घाटी की कृषि के बारे में रोचक बात यह है कि मोहन-जोदाड़ो में गेहूं के जो अवशेष मिले हैं, वे उस किस्म के हैं, जिसकी खेती अभी तक आधुनिक पंजाब में की जाती है।

कृषि के प्रसार ने कई अन्य गतिविधियों को भी जन्म दिया, जैसे मकान बनाना, बरतन और टोकरियां बनाना और बुनाई का काम। टिककर जीवन बिताने के लिए स्थाई आवास की भी जरूरत पड़ी। इससे मकान बनाने की कला विकसित हुई, जिसके लिए धूप में सुखाई गयी मिट्टी की ईंटें इस्तेमाल की जाती थीं। पश्चिम

एशिया और चीन में, धूप में सुखाई गयी ईंटों से बनी दीवारें काफी लोकप्रिय थीं। दीवारों पर चूने का पलस्तर चढ़ा दिया जाता था, जैसा कि अब भी भारत और तीसरी दुनिया के गांवों में किया जाता है।

प्रकृति की उदारता के कारण, कृषि उत्पाद इतना अधिक होता था कि उसके भंडारण की समस्या एक और महत्वपूर्ण नयी खोज का कारण बनी और वह नयी खोज थी, बरतनों का निर्माण। बरतन मिट्टी से बनाये जा सकते थे, और उनका इस्तेमाल न केवल अनाज के भंडारण के लिए, बल्कि खाना पकाने के लिए भी किया जाता था। पश्चिम एशिया से मिले प्रमाणों से यह पता चलता है कि पहले-पहल लगभग 6000 ई. पू. मिट्टी को हाथों से ढालकर बरतनों का निर्माण किया गया। बरतन बनाने के लिए चाक का इस्तेमाल बहुत आगे चलकर किया गया। महत्वपूर्ण बात है, मिट्टी के बरतनों को मजबूत और टिकाऊ बनाने के लिए उन्हें आग में पकाना। आग में तपे मिट्टी के बरतनों के इस्तेमाल से निस्संदेह, अनाज का भंडारण तो संभव हुआ ही, साथ इसके द्वारा एक और भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। यह था, भोजन बनाने के तरीके में परिवर्तन। आग में पके बरतनों से कई तरह से खाना पकाया जाने लगा, जबकि उससे पहले भोजन को आग पर केवल भून लिया जाता था, जैसा कि नीएंडरतल किया करते थे। इससे मानव के आहार में इतना अधिक सुधार हुआ, जितना कि पहले कभी नहीं हुआ था।

नवप्रस्तर युग की एक और महत्वपूर्ण खोज थी, टोकरियां बनाने और बुनने की कला। टोकरियां बनाने की शुरुआत भी सबसे पहले पश्चिम एशिया में हुई और संभवतः यह बुनाई के विकास में भी सहायक सिद्ध हुई क्योंकि दोनों में खास किस्म की नियमितताओं, और लगभग एक जैसे नमूनों की जरूरत होती है। परंतु जोती गयी फसल की पहली कटाई के बाद जो घटनाएं घटीं उनके क्रम के बारे में सभी विशेषज्ञ सहमत नहीं हैं। अमरीकी पुरातत्ववेत्ता लेविस बिनफोर्ड के अनुसार बहुत सी ऐसी 'उपलब्धियां' जिन्हें कृषि की खोज का सहज परिणाम समझा जाता है, वास्तव में दूसरे संदर्भों में पहले से ही प्राप्त की जा चुकी थीं। उनका कहना है बरतनों के निर्माण की शुरुआत जापान में शिकार करने और संग्रह करने वाले उन लोगों से हुई जो समुद्र पर निर्भर होते थे। अन्य प्रमाणों से इस तथ्य का संकेत मिलता है कि कृषि और घरेलू पौधे उगाने की जानकारी, उससे कहीं पहले उस समय से मौजूद थी, जब लोग शिकार और संग्रह को छोड़कर कृषि के लिए एक जगह आबाद हो गये।

क्रम चाहे कोई भी रहा हो, लगभग 3000 वर्ष ई. पू. तक मानव जाति

ने वे सब बौद्धिक क्षमताएं प्राप्त कर ली थीं, जो कि आगे चलकर कलाओं, संगीत, साहित्य, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों से जुड़े अनेक प्रकार के कार्यकलापों में पुष्पित और पल्लवित हुई और इन क्षमताओं ने आगे आने वाली सहस्राब्दियों में विभिन्न पथ प्रदर्शक खोजों के लिए एक गति निर्धारित कर दी।

आज जबकि इक्कीसवीं शताब्दी की शुरुआत हो ही गयी है, यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कृषि-क्रांति के बाद पिछले मात्र 10,000 वर्षों के दौरान मानव जाति में जो परिवर्तन आया है उसकी रफ्तार कृषि क्रांति से पहले से लगभग 20 लाख वर्षों की तुलना में कितनी तेज रही है। *आस्ट्रालोपिथेकस* नामक छोटे से अज्ञात प्राणी को, जिसके हाथ में पत्थर रहता था, आधुनिक मानव में बदलने में कम से कम 20 लाख वर्ष लग गये। यह जैविक विकास की प्रगति है। वाचित शब्दों के प्रयोग की शुरुआत के साथ ही सब कुछ बदल गया, और उस बदलाव का चरमरूप हम पुरा-पाषाण युग में फलती-फूलती चित्रकला के रूप में देख सकते हैं। किंतु सांस्कृतिक विकास अपनी जड़ें तब पकड़ पाया जब मानव जाति ने एक व्यवस्थित जीवन जीना और स्वयं अपना खाद्यान्न उगाना सीख गया। खानाबदोश जीवन की चिंताओं और क्लेशों से मुक्ति पाने के बाद मानव जाति अपनी ऊर्जा को सर्जनात्मक और रचनात्मक कार्यकलापों पर अधिक केंद्रित कर पायी। उस दृष्टि से आधुनिक मानव का जन्म असली रूप में कृषि की शुरुआत से ही हुआ।

10

प्रश्न समय निर्धारण का

जो वैज्ञानिक जीवावशेषों के रिकार्ड से, अतीत को खोजते हैं, वे जीवावशेषों की आयु जानने के लिए अलग-अलग प्रकार के अनेक तरीके इस्तेमाल करते हैं। समय निर्धारण के अधिकतर तरीके रेडियो आइसोटोपों के 'आधे जीवन' पर आधारित होते हैं। जैसा कि हम जानते हैं, रेडियो आइसोटोप साधारण परमाणु के ऐसे समस्थानिक (आइसोटोप) होते हैं, जिनके केंद्रों में अधिक न्यूट्रान मौजूद होते हैं। सभी रेडियो आइसोटोप अस्थाई परमाणु होते हैं और उनका विकिरण अल्फा, बीटा और गामा किरणों के रूप में होता है। इस प्रक्रिया में वे एक अलग तत्व के स्थाई परमाणु में बदल जाते हैं।

रेडियो आइसोटोप में यह अनोखापन पाया जाता है कि प्रत्येक रेडियो आइसोटोप का एक निश्चित गति से 'क्षय' होता जाता है, या प्रत्येक आइसोटोप एक स्थाई परमाणु में बदलता जाता है। यह हर आइसोटोप की विशेषता होती है। वैज्ञानिक आमतौर पर इस क्षय को किसी विशेष रेडियो आइसोटोप के 'आधे जीवन' के रूप में व्यक्त करते हैं। 'आधा जीवन' वह समय है जो कि किसी नमूने में मौजूद रेडियो आइसोटोप के आधे परमाणुओं का क्षय होने में लगता है। चूंकि यह गति अपरिवर्तनीय होती है इसलिए किसी नमूने में मौजूद रेडियो आइसोटोप की मात्रा से (वास्तव में रेडियो आइसोटोप और उसके स्थायी क्षय के बीच के अनुपात को मापा जाता है) उस नमूने की आयु निर्धारित की जा सकती है।

रेडियो आइसोटोप का आधा जीवन एक सेकेंड के अल्पांश से लेकर कई लाख वर्ष तक का हो सकता है। समय निर्धारण के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले दो सबसे आम तरीके प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले रेडियो आइसोटोप—कार्बन 14 और पोटेशियम 40 पर आधारित होते हैं।

अधिकांश मानव-पूर्व जीवावशेष लाखों वर्ष पुराने हैं। जीवावशेषों के ऐसे नमूनों के समय निर्धारण के लिए जो तरीका इस्तेमाल किया जाता है, वह

पोटेशियम-आर्गन-समय निर्धारण नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत 12,500 लाख वर्ष की अर्द्धायु वाले और सभी चट्टानों में पाये जाने वाले रेडियो सक्रिय आइसोटोप पोटेशियम-40 के गुणधर्म को काम में लाते हुए रेडियो सक्रिय क्षय द्वारा उसे दुर्लभ गैस आर्गन-40 में बदला जाता है। ज्वालामुखी की राख या लावा से बनी चट्टानों में, चट्टान बनने से पहले पैदा हुई आर्गन गैस को बाहर निकल चुकी गैस मान लिया जाता है अर्थात् केवल ज्वालामुखी के फटने के बाद पैदा हुई गैस को समय की गिनती के लिए हिसाब में शामिल किया जाता है। जिस गति से पोटेशियम-40 परमाणु, आर्गन-40 में परिवर्तित होते हैं, वह हमें उसके आधे जीवन से ज्ञात होती है। इसलिए, जिस चट्टान में कोई जीवाश्म, जबड़ा या खोपड़ी गड़ी हुई होती है, उसकी परत में जमे आर्गन की मात्रा को मापकर जीवावशेष की आयु का लगभग सही-सही हिसाब लगाया जा सकता है। किंतु पोटेशियम-आर्गन तरीके का इस्तेमाल करके केवल 100,000 वर्ष से भी पुराने जीवावशेषों की आयु का पता लगाया जा सकता है। इससे कम पुराने जीवावशेष की आयु इस तरीके से निर्धारित नहीं की जा सकती, क्योंकि क्षय के कारण बनी आर्गन-40 गैस की मात्रा बहुत कम होती है।

समय निर्धारण के एक और व्यापक रूप से इस्तेमाल किये जाने वाले तरीके के अंतर्गत रेडियो सक्रिय कार्बन-14 के क्षय का इस्तेमाल किया जाता है, जिसका आधा जीवन 5,730 वर्ष होता है। वह सभी जीवित पदार्थों में मौजूद रहता है। कार्बन-14 की उत्पत्ति ऊपरी वायुमंडल में ब्रह्मांड किरणों में मौजूद न्यूट्रोनों के साथ नाइट्रोजन-14 की क्रिया से होती है। पौधे और पशु जब तक जीवित रहते हैं तब तक वे हवा से कार्बन डाइआक्साइड को प्राप्त करते रहते हैं। इस प्रक्रिया में वे गैर-रेडियो सक्रिय कार्बन-12 के हर दस लाख परमाणुओं के पीछे कार्बन-14 का एक परमाणु प्राप्त करते हैं। जब वे मर जाते हैं, तो उसके बाद कार्बन-14 को प्राप्त करना बंद कर देते हैं। दूसरी ओर, उनके भीतर जितना कार्बन-14 मौजूद होता है, वह खंडित होना शुरू हो जाता है। किसी भी जीव के जीवन काल में कार्बन-14 और कार्बन-12 का अनुपात स्थिर रहता है। इसलिए जीव की मृत्यु हो जाने के बाद, कार्बन-14 के खंडित होते जाने के परिणामस्वरूप यह अनुपात बदलने लगता है। जिस गति से कार्बन-14 परमाणु खंडित होते हैं, वह कार्बन-14 से कार्बन-12 के मापे हुए अनुपात से मालूम होती है। इसलिए उस गति के आधार पर नमूने की आयु का हिसाब लगाया जा सकता है। जो नमूने 40,000 वर्ष से अधिक पुराने होते हैं, उनके संबंध में 'रेडियो कार्बन समय निर्धारण' का तरीका भरोसेमंद नहीं होता है क्योंकि नमूने में बचे हुए कार्बन-14 की मात्रा इतनी कम

होती है कि उसे सही-सही नहीं आंका जा सकता।

40,000 और 100,000 वर्ष के बीच वाली आयु के नमूनों के लिए एक तीसरा तरीका भी उपलब्ध है। इसके अंतर्गत एक ऐसी प्रक्रिया काम में लायी जाती है जिसे 'ताप संदीप्ति' कहते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान नमूने को 300 से 600 से. के बीच के तापमान तक गरम करने से उसमें से रोशनी निकलने लगती है। यह रोशनी उन इलेक्ट्रानों के निकलने से पैदा होती, जो कि पहले से आग में तपाये गये बरतनों, या एक कालखंड के दौरान गरम हुई चट्टान में जमा होते हैं। नमूने में से निकलने वाली रोशनी की तेजी जमा हुए इलेक्ट्रानों की संख्या के अनुपात में होती है। नमूनों में इलेक्ट्रानों के जमा होने का कारण होता है, नमूनों का प्राकृतिक विकिरण, जैसे ब्रह्मांड किरणों के विकिरण से प्रभावित होते रहना। यदि नमूना बहुत पुराना होता है, तो वह अपेक्षाकृत अधिक समय के लिए विकिरण से प्रभावित होता रहा होगा और यदि नमूने की आयु कम रही होगी, तो वह उसके अनुसार कम समय के लिए विकिरण से प्रभावित हुआ होगा। इसके परिणामस्वरूप एक अधिक पुराने नमूने में अधिक इलेक्ट्रान जमा हुए होंगे, और गरम करने पर उसमें से अधिक रोशनी निकलेगी। इसकी तुलना में कम आयु वाले नमूने में से कम रोशनी निकलेगी। नमूने को गरम करने के पश्चात उसमें से निकलने वाली रोशनी को मापा जा सकता है और उसकी तीव्रता से नमूने की आयु का हिसाब लगाया जा सकता है।

उपयोगी अध्ययन

ब्रायंट वॉन एम : 'इन सर्च आफ द फर्स्ट अमेरिकंस', *इयर बुक आफ साइंस ऐंड द फ्यूचर,* 1993 (एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका इंक. 1992)

कोपेंस, यवेस : 'ईस्ट साइड स्टोरी, दि ओरिजिन आफ ह्यूमनकाइंड : *साइंटिफिक अमेरिकन,* मई 1994

फिशमैन, जुशुआ : 'हार्ड ऐविडेंस', *डिस्कवर,* फरवरी 1992

फोले, राबर्ट : *ह्यूमंस बिफोर हयूमैनिटी* (ब्लैकवेल, 1995)

गोरे, रिक : 'नीएंडरतल', *नेशनल जिओग्राफिक,* जनवरी 1996

ग्रिब्बिन, जान ऐंड मेरी ग्रिब्बिन : *चिल्ड्रन आफ द आइस* (बासिल ब्लैकवेल)

जोहानसन, डोनाल्ड सी : 'फेस टु फेस विद् लूसीस फेमिली', *नेशनल जिओग्राफिक,* मार्च 1996

जोहानसन, डोनाल्ड सी : 'फर्स्ट फैमिली आफ अरली मैन', *नेशनल जिओग्राफिक,* दिसंबर 1976

लीके, मेरी : *ओल्डुवाई गार्ज* (कोलिंस, 1979)

लीके, मेरी डी : 'फूटप्रिंट्स फ्रोजन इन टाइम', *नेशनल जिओग्राफिक,* अप्रैल 1979

लीके, मीव : 'दि डान आफ ह्यूमंस', *नेशनल जिओग्राफिक,* सितंबर 1995

लीके, रिचर्ड : *दि ओरिजिन आफ ह्यूमनकाइंड* (फीनिक्स, 1995)

लीके, रिचर्ड ऐंड एलन वाकर : 'होमो इरेक्टस अनअर्थ्ड', *नेशनल जिओग्राफिक,* नवंबर 1995

लीके, रिचर्ड ऐंड रोजर लेविन : *ओरिजिंस रीकंसीडर्ड* (एबकस, 1993)

लीके, रिचर्ड ऐंड रोजर लेविन : *पीपल आफ द लेक* (कोलिंस, 1979)

लेविन, रोजर : *बोन्स आफ कंटेंशन* (टचस्टोन, 1988)

लवजाय, सी ओवेन : 'दि एवोल्यूशन आफ ह्यूमन वर्किंग', *साइंटिफिक अमेरिकन,* नवंबर 1998

पुटमैन, जान जे : 'दि सर्च फार माडर्न ह्यूमंस', *नेशनल जिओग्राफिक,* अक्तूबर 1988

शिपमैन, पैट : 'बैफलिंग लिंब आन दि फेमिली ट्री', *डिस्कवर,* सितंबर 1986

श्रीव, जेम्स : 'आर्गुमेंट ओवर ए वुमैन', *डिस्कवर,* सितंबर 1990

श्रीव, जेम्स : 'इरेक्टस राइजिंग', *डिस्कवर,* सितंबर 1994

श्रीव, जेम्स : 'सनसेट आन दि सवन्ना', *डिस्कवर,* जुलाई 1996

श्रीव, जेम्स : 'दि नीएंडरतल पीस', *डिस्कवर,* सितंबर 1995

स्ट्रिंगर, क्रिस्टोफर : 'दि एमर्जेंस आफ माडर्न ह्यूमंस', *साइंटिफिक अमेरिकन,* दिसंबर 1990

टैट्टरसाल, इयान : *दि फासिल ट्रेल* (आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995)

दि कैम्ब्रिज एनसाइक्लोपीडिया आफ ह्यूमन एवोल्यूशन, कैम्ब्रिज, 1992

टाथ, निकोलस : 'दि फर्स्ट टेक्नोलोजी', *साइंटिफिक अमेरिकन,* अप्रैल 1997

वीवर, केनेथ एफ : 'दि सर्च फार आवर एंसेस्टर्स', *नेशनल जिओग्राफिक,* नवंबर 1985

विलिस, क्रिस्टोफर : *दि रनअवे ब्रेन* (हार्पर कोलिंस, 1994)

वुड, बरनार्ड : 'एंटीक्विटी आफ मेन इन अफ्रीका', इयर बुक आफ साइंस एंड दि फ्यूचर, 1978 (एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका इंक. 1997)

विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-32 द्वारा लेज़र टाइपसेट और
शिवम् ऑफसेट, नारायणा, नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित।